नैतिक और आध्यात्मिक गुण तथा अमेरिका के सरकारी स्कूल

Pages = 91

Reprinted by Special Permission
by
THE UNITED STATES INFORMATION SERVICE
NEW DELHI.

MORAL AND SPIRITUAL VALUES IN THE PUBLIC SCHOOLS
Printed by
The Caxton Press, New Delhi
V—3—55

नैतिक और आध्यात्मिक गुण तथा अमेरिका के सरकारी स्कूल

शिक्षण नीति का निर्धारक कमीशन

अमेरिका का राष्ट्रीय शिक्षण-संघ और स्कूल-प्रबन्धकर्ताओं का अमेरिकी संघ, १२०१-सोलहवीं स्ट्रीट, नोर्थवेस्ट, वाशिंगटन ६, डी० सी०

प्राक्कथन

राष्ट्रीय शिक्षण-संघ (The National Education Association) की प्रतिनिधि-सभा (Representative Assembly) का जो वार्षिक अधिवेशन १९४८ में हुआ था, उसमें कक्षाध्यापक-विभाग (The Department of Class-room Teachers) के सुझाव पर कुछ सज्जनों को यह देखने का काम सौंपा गया कि नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में सरकारी स्कूलों का भाग क्या और कितना रहता है। इन सज्जनों ने सिफ़ारिश की कि संघ को नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण में उन्नति के उपाय सुझाने चाहिएं, और प्रतिनिधिसभा ने इसका समर्थन किया।

तब संघ की कार्यकारिणी ने शिक्षण-नीति के निर्धारक कमीशन (The Education Policies Commission.) को इस समस्या पर विस्तारपूर्वक विचार करके अपनी रिपोर्ट देने के लिए कहा। कमीशन ने यह काम उठा लिया।

कमीशन ने तुरन्त ही कुछ लेखा ऐसा तैयार करवाया जिससे इस समस्या को और तत्सम्बन्धी प्रश्नों को समझने में तथा अपनी सिफ़ारिशों का निश्चय करने में सहायता मिले। इस लेखे में अन्य सामग्री के अतिरिक्त, सरकारी स्कूलों में नैतिक तथा आत्मिक गुणों के शिक्षण के लिए उपलब्ध साधनों का विवरण, तत्सम्बन्धी पुस्तकों की सूची और उनका परिचय, नैतिक तथा आत्मिक गुणों के शिक्षण के विषय में विविध विचारों का संग्रह, और इस विषय की अनेक वैकल्पिक रूपरेखाएं भी थीं।

अपने कार्य के प्रसंग में कमीशन ने बहुत से शिक्षकों, स्कूलों के प्रबन्धकर्ताओं और सम्बद्ध क्षेत्रों के विशेषज्ञों से भी सलाह-मशवरा किया। रिपोर्ट तैयार करते हुए, बीच में उस पर विचार करने के लिए, कमीशन ने चार बार अपनी बैठकें कीं, और दिसम्बर १९५० में डाक द्वारा सब सदस्यों से उसके प्रकाशन की अनुमति ली गयी।

कमीशन अपने सेक्रेटरी डा० विलिअम जी० कार का कृतज्ञ है, क्योंकि उनकी सहायता के बिना यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था। उनकी ही

लगन और कुशलता का फल है कि कमीशन के सदस्यों और अपनी सलाह उदारता-पूर्वक देने वाले अन्य सज्जनों के विचारों को इस रिपोर्ट में ऐसी सुन्दरता से समाविष्ट किया जा सका है।

इस रिपोर्ट में एक अति महत्वपूर्ण समस्या पर विचार किया गया है। इस राष्ट्र की स्थिरता के लिए आवश्यक है कि नैतिक और आत्मिक गुणों का सम्मान, दिल और दिमाग, दोनों से किया जाय। कमीशन को आशा है कि यह रिपोर्ट देश-भर के घरों, धार्मिक संस्थाओं और स्कूलों की रुचि, नैतिक और आत्मिक गुणों की ओर आकृष्ट कर सकेगी। और इस जन-रुचि के कारण, उन गुणों के विकास के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहने का तथा उसे अधिक प्रबल कर देने का उन सरकारी स्कूलों को भी उत्साह होगा जिनसे कि अमेरिका इतना महान बन सका है।

इस पुस्तक में संगृहीत सिफारिशें शिक्षा-नीति के निर्धारक कमीशन (The Education Policies Commission) की हैं, और इस कमीशन की नियुक्ति अमेरिका के "राष्ट्रीय शिक्षा-संघ" (The National Education Association) तथा "स्कूल-प्रबन्धकर्ता-संघ" (Association of School Administrators) ने की थी। इसके इस रूप में प्रकाशन का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इन दोनों संघों ने इसे नियम-पूर्वक स्वीकृत कर लिया है।

सं० रा० अमेरिका के राष्ट्रीय शिक्षण संघ और स्कूल प्रबन्धकर्ताओं के अमेरिकी संघ द्वारा नियुक्त

शिक्षण-नीति का निर्धारक कमीशन

जब दिसम्बर १९५० में 'अमेरिका के सरकारी स्कूलों में नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास' नामक यह रिपोर्ट प्रकाशनार्थ स्वीकृत की गयी थी तब निम्नलिखित २० व्यक्ति सदस्य थे :

नियुक्त सदस्य

जौन जे० नौर्टन, अध्यक्ष

जौर्ज ए० सैल्क, उपाध्यक्ष

एथेल जे० एल्पनफेल्स
रूबी एन्डरसन
सारा सी० काल्डवेल
जेम्स बी० कोनान्ट
ड्वाइट डी० आइजनहौवर
एलोन्ज़ो जी० ग्रेस
यूजीन एच० हेरिंगटन
हेनरी एच० हिल
विलियम जेन्सन
गेलैन जोन्स
एन० डी० मैकूम्स
टी० आर० मैकोनेल
मे न्यूमैन
ली एम० थर्स्टन

पदेन सदस्य

विलर्ड ई० गिवन्स
वर्थ मैक्लूर
कौर्मा ए० मौरी
वारेन टी० व्हाइट

विलियम जी० कार, सचिव

विल्बर एफ० मुरा, सहायक सचिव

किसी देश की जनता ने अपनी शिक्षण-संस्थाओं से इतनी अधिक अपेक्षा नहीं रखी जितनी अमेरिकियों ने। और अन्य किसी के स्कूलों और शिक्षकों ने उसकी इतनी सेवा की भी नहीं।

......यह समाज, आज के सभी समाजों में, सबसे अधिक विभिन्न तत्वों से मिलकर बना है। इसकी जातीय पृष्ठ-भूमि, धार्मिक विश्वास, और सामाजिक तथा धार्मिक हित, सभी अत्यन्त विभिन्न हैं। और इसी लिए यह समाज सदा ही संघर्ष को जन्म देने वाले विशेषाधिकारों और विनाशक मतभेदों का शिकार बनता प्रतीत होता रहा है। परन्तु ये शक्तियां सफल नहीं हो पायीं। अमेरिका के कक्षा-गृहों और खेल के मैदानों में उन्हें परास्त कर दिया गया।

—हेनरी स्टील कामेजर,
कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में इतिहासाध्यापक
("लाइफ" १६ अक्तूबर १६५० के अंक में पृष्ठ ४६–४७ पर
"आवर स्कूल्स हैव केप्ट अस फ्री' से उद्धृत)

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

आधार

प्रथम अध्याय

आधार

नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास सदा से शिक्षण का एक बड़ा लक्ष्य रहा है। समाज इस लक्ष्य की पूर्ति का अपनी सब संस्थाओं से अनुरोध करता रहता है। घरों और स्कूलों से इस सम्बन्ध में विशेष अपेक्षा की जाती है, क्योंकि बालकों के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा में इन दोनों का स्थान प्रमुख होता है।

नैतिक और आत्मिक गुणों से हमारा अभिप्राय उन गुणों से है जिनपर आचरण करने से जीवन उच्च तथा परिष्कृत हो जाता और आचार के उन आदर्शों के अनुकूल बन जाता है जिनको हमारी जनतन्त्री संस्कृति में मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

अमेरिकी जनता अपने देश के स्कूलों से अपेक्षा करती है कि वे नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास भी करेंगे। उसकी यह अपेक्षा उचित ही है। स्कूलों ने भी यह उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया हुआ है। जो स्त्री-पुरुष इन स्कूलों में पढ़ाते हैं वे समाज का उत्तरदायी सदस्य होने के नाते उसकी व्यवस्था का भी आदर करते हैं। शिक्षक के रूप में वे एक ऐसा पेशा अपना चुके हैं जो सामाजिक आचार के नियन्त्रण में इन गुणों को प्रथम स्थान प्रदान करता है।

कोई भी समाज सदाचार की व्यवस्था के बिना जीवित नहीं रह सकता। सामाजिक जीवन में नैतिक और आत्मिक गुणों के बिना काम चल ही नहीं सकता। ज्यों-ज्यों समाज का संघटन अधिकाधिक पेचीदा बनता जाता है और ज्यों-ज्यों सबकी सुख-समृद्धि सबके परस्पर सहयोग पर निर्भर होती जाती है, त्यों-त्यों सदाचार के सर्वसम्मत सिद्धान्तों की आवश्यकता भी अधिकाधिक बढ़ती जाती है। विशेषत: जो समाज व्यक्तियों को अधिकतम स्वतंत्रता देने का पक्षपाती हो, उसमें सबकी मान्यता से निर्धारित सदाचार के नियमों का

व्यक्तियों द्वारा पालन और आदर और भी आवश्यक हो जाता है। किसी समाज का संगठन कितनी ही सूझ-बूझ से क्यों न किया जाय, उसकी शासन-व्यवस्था को कितनी ही दूरदर्शिता से क्यों न सम्भाला जाय और उसके कानूनों तथा आदेशों का निर्माण कितने ही उच्च उद्देश्य से क्यों न किया जाय, यदि उसके व्यक्तियों में सचाई, ईमानदारी और निजी अनुशासन का अभाव होगा तो वह सुखी और सुरक्षित नहीं रह सकेगा।

अमेरिका के सरकारी स्कूलों में धार्मिक विश्वासों का सम्मान

संयुक्तराज्य अमेरिका के सरकारी स्कूल कानून द्वारा स्थापित और नियन्त्रित हैं। उनका व्यय सरकारी कोष से चलता है। उनकी नीति का निर्धारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जनता द्वारा निर्वाचित अधिकारी करते हैं। ये स्कूल शासन और संचालन की दृष्टि से तो सरकारी अर्थात् सार्वजनिक हैं ही, उनमें सबका प्रवेश हो सकने की दृष्टि से भी सार्वजनिक हैं।

सार्वजनिक संस्था होने के कारण इस देश के सरकारी स्कूलों को धर्म-विशेष से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। पारलौकिक शक्ति और उससे मनुष्य के सम्बन्ध के विषय में जो नाना मत-मतान्तर हैं उनमें से किसी एक को किसी से मनवाने का काम वे नहीं कर सकते।

नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण में सरकारी स्कूल अति महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। उनका यह महत्वपूर्ण कार्य कभी कभी इस कारण तिरोहित अथवा अदृश्य हो जाता है कि उनको धर्म-विरोधी बतला कर उनकी निन्दा करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु वे धर्म-विरोधी नहीं हैं। प्रत्युत सरकारी स्कूलों की नीति सब धार्मिक मतों का आदर और किसी से भी पक्षपात न करके चलने की है।

कुछ लोगों का विश्वास सरकारी स्कूलों में नहीं है। यह कमीशन मानता है कि किसी भी व्यक्ति को वैसा मत रखने की स्वतन्त्रता है। परन्तु हमें यहां उससे कुछ प्रयोजन नहीं। हमारा विश्वास है कि हमारे सरकारी स्कूल अच्छे स्कूल हैं। हमारा विश्वास है कि सरकारी स्कूल नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास कर सकते हैं, और वैसा सफलता-पूर्वक करते भी हैं। वैसा करके वे वातावरण को धर्म के अनुकूल बना देते हैं।

स्पष्ट है कि यदि अमेरिका की लगभग २४० विभिन्न धार्मिक संस्थाओं में से बहुत-सी अपने अपने पृथक धार्मिक स्कूल चलाने लगें तो सरकारी स्कूलों की जिस पद्धति को हम जानते पहचानते और सर्वसाधारण के लिए उपयोगी मानते हैं ओर जिसका एक अनिवार्य परिणाम समाज की एकता और एकनिष्ठता होता है, वह अमेरिकी जीवन में से लुप्त हो जायगी।

हम यह मानकर चलते हैं कि अधिकतर सब अमेरिकी नवयुवकों का शिक्षण सरकारी स्कूलों में ही होना चाहिए, और होता रहेगा; उनमें उस शिक्षण से भ्रातृत्व, जनतन्त्र, और समानता सरीखी ऊंची भावनायें जागृत होंगी; हमारे कानून प्राइवेट स्कूलों को भी — जिन में किसी धर्म विशेष का शिक्षण होता है ऐसे स्कूलों को भी — चलते रहने देंगे, और उन्हें वैसा करना ही चाहिए; और सरकारी स्कूलों को किसी धर्म-विशेष से असम्बद्ध ही रहना चाहिए, और वे वैसे ही रहेंगे। हमारा उद्देश्य यह सब मानकर चलने में यह है कि इस प्रकार उत्पन्न परिस्थितियों में, हम नैतिक और आत्मिक गुणों के यथासंभव उत्कृष्ट शिक्षण के उपाय सोच और सुझा सकेंगे।

धर्म अमेरिकी जीवन का महत्वपूर्ण अंग है

अमेरिका को बसाया ही धर्म-भीरु लोगों ने था। अमेरिका के संविधान और "नागरिक अधिकारों के बिल" में, धार्मिक आदर्शों की सत्ता स्पष्ट रूप में स्वीकार की गयी है, और प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने धार्मिक विश्वासों और आदेशों के अनुसार ईश्वर की आराधना करने की स्वतन्त्रता दी गयी है। किसी एक या अनेक धर्मों को राज्य का धर्म न मानने का अर्थ धर्म-मात्र को न मानना नहीं है। अमेरिका के सरकारी स्कूल भी, अपने देश की सरकार की भांति, धार्मिक मन्तव्यों की स्वतन्त्रता के दृढ़ पक्षपाती हैं।

हमारे राष्ट्र को बलवान् बनाने में धार्मिक विभिन्नता और सहिष्णुता से बहुत सहायता मिली है; और हमारे सरकारी स्कूलों में भी ये दोनों बातें अपने यथार्थ रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। और क्योंकि हमारे देश में धार्मिक मत अनेक हैं, इसलिए सर्वसाधारण का शिक्षण भी धार्मिक स्वतंत्रता के अमेरिकी विचार से संगत होना चाहिए। उसका आधार किसी धर्म-विशेष के सिद्धान्तों का प्रचार नहीं, अपितु सब धर्मों का उचित आदर होना चाहिए।

शिक्षण को विविध धार्मिक विचारों का पंचमेल बनाने के स्थान पर, उसमें उन नैतिक और आत्मिक गुणों का समावेश होना चाहिए जिनको सभी धर्मों तथा मतों के अनुयायी ग्राह्य मानते हैं। इस प्रकार के शिक्षण का गम्भीर धार्मिक महत्व भी है।

अमेरिका के सरकारी स्कूलों में नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण देते हुए न तो धार्मिक स्वतंत्रता का व्याघात होना चाहिए और न धर्म और राज्य को पृथक् रखने की नीति का उल्लंघन। हमारे समाज ने, किसी को किसी धर्म या मत का अनुगामी बनने के लिए आवश्यक शिक्षण का काम, घरों या धार्मिक संस्थाओं पर छोड़ दिया है। इस प्रकार, नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में भाग तो घर, धार्मिक संस्था और स्कूल, तीनों का रहता है, परन्तु तीनों में से प्रत्येक वही भाग लेता है जिसके लिए वह विशेष रूप से योग्य होता है।

शिक्षण-नीति में नैतिक और आत्मिक गुणों की चर्चा बार-बार होती है

नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास, शिक्षण के अन्य सब उद्देश्यों की पूर्ति का आधार है। इन गुणों की उपेक्षा करके चलने वाला शिक्षण, लक्ष्य-हीन शिक्षण होता है। जिन गुणों का मानव-व्यवहार में उपयोग न हो वे व्यर्थ हैं।

सरकारी स्कूलों की पद्धति साधारणतया इस सत्य को मानकर चलती है कि शिक्षण के सब उद्देश्यों का संगम, नैतिक और आत्मिक गुणों में जाकर होता है। "शिक्षण-नीतियों का निर्धारक कमीशन" (The Educational Policies Commission) पहले भी यह घोषणा कर चुका है कि प्रस्तुत विवरण सहित "शिक्षण के उद्देश्यों के प्रत्येक विवरण का आधार, किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों का यह निर्णय ही होता है कि मानव-व्यवहार और आचार में क्या अच्छा है और क्या बुरा, क्या सत्य है और क्या असत्य, क्या सुन्दर है और क्या असुन्दर, और क्या मूल्यवान् है और क्या निरुपयोगी।" शिक्षण के उद्देश्यों से, लोगों के सदाचार सम्बन्धी मन्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है। "अपने विचार और अनुभव के पश्चात् लोग जिसे अच्छा ठहराते हैं उसे वे

स्थिर और सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं.........जिसे वे अच्छा समझते हैं उसे वे शिक्षण के द्वारा अपनी भावी सन्ततियों तक भी पहुंचाने का यत्न करते हैं।"[१]

शिक्षण के प्रत्येक विभाग में, नैतिक और आत्मिक गुणों की दृष्टि से, मार्ग-निर्देश की आवश्यकता रहती ही है। कोई नहीं कह सकता कि वर्तमान पीढ़ी के नवयुवकों को आगामी वर्षों में किन समस्याओं का सामना करना पड़ जायगा। इसलिए शिक्षण की नीति निर्धारित करते हुए भावी आवश्यकताओं की कल्पना और वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने का यत्न किया जाता है। फिर भी भविष्य अनिश्चित ही रहता है। परन्तु नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास से एक ऐसा माप-दण्ड मिल जाता है जिससे हम किसी भी भावी समस्या की कल्पना कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ, नागरिकता के शिक्षण में, हम पहले से यह नहीं जान सकते कि आगे चल कर किन प्रश्नों को हल करना पड़ेगा। परन्तु भविष्य में चाहे जिस समस्या से सामना हो, अमेरिकी समाज के तत्सम्बन्धी गुणों के दृढ़ अभ्यास की और उनके प्रति निष्ठा स्थिर रखने की आवश्यकता रहेगी ही। किसी भी नागरिक के लिए देश की शासन-व्यवस्था का ज्ञान उपयोगी है, परन्तु पर्याप्त नहीं। किसी भी नागरिक के लिए सामयिक समस्याओं और प्रवृत्तियों का ज्ञान उपयोगी है, परन्तु पर्याप्त नहीं। परन्तु नैतिक औ आत्मिक गुणों पर बुद्धि-पूर्वक आचरण करने से किसी भी नागरिक के अन्य अनेक ज्ञानों का मूल्य बढ़ जाता है, क्योंकि ये गुण राजनीतिक तथा नागरिक व्यवहारों में भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। और जो बात नागरिकता के शिक्षण में सत्य है, वह जीवन के वैयक्तिक, सामाजिक और आर्थिक विभागों में भी सत्य ठहरती है।

---

१. देखो "राष्ट्रीय-शिक्षण-संघ" (The National Education Association) और "स्कूल-प्रबन्धकर्त्ताओं के अमेरिकी संघ" (American Association of School Administrators) द्वारा नियुक्त "शिक्षण-नीति-निर्धारक कमीशन" (Educational Policies Commission) की लिखी पुस्तिका "The Purposes of Education in American Democracy" (अमेरिकी जनतन्त्र में शिक्षण के उद्देश्य) १९३८, का पृष्ठ १ व २।

आधुनिक प्रवृत्ति के कारण शिक्षण में इन गुणों का महत्व और भी बढ़ गया है

कभी कभी कुछ अमेरिकियों को, संसार की अस्त-व्यस्त वास्तविकताओं के साथ अपने माने हुए नैतिक गुणों की संगति लगाना कठिन लगने लगता है। इस कारण कुछ लोग किसी धर्म का सहारा ले लेते हैं। कुछ लोग विज्ञान की विधियों और परिणामों को सदाचार का निर्णायक मानने लगते हैं। कुछ लोग उसको ही सदाचार का मार्ग मान लेते हैं जो समाज के बार-बार के अनुभव से ठीक लगता है। और कुछ लोग सदाचार की सर्वथा उपेक्षा करने लगते, स्वतन्त्र संसार द्वारा माने हुए नैतिक गुणों की सर्वथा व्यर्थ बतलाने लगते, बात बात में अविश्वास-पूर्वक सिद्धान्त और व्यवहार की असंगति दिखाने लगते, और सभी आदर्शों को निरर्थक अथवा दम्भ-पूर्ण बतलाने लगते हैं।

हमारे राष्ट्र ने सब मिलाकर अपने नैतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह बहुत ऊंचे स्तर पर किया है। हमने अन्य राष्ट्रों की सहायता अति उदारता से की है। हमने संयुक्त-राष्ट्र-संघ (यूनाइटेड नेशन्स) और उसकी विशिष्ट शाखाओं के कार्य में योग दिया और उनका समर्थन किया है। हम सं० रा० संघ के निर्णयों और कार्यक्रमों का, आर्थिक, सैनिक तथा राजनीतिक साधनों से, समर्थन करते रहे हैं। युद्ध-निवृत्त सैनिकों की सहायता हमने, उनके शिक्षण, रोजगार तथा घर बसाने के लिए धन देकर, की है। विज्ञान और चिकित्सा में अनुसन्धान द्वारा हमने भारी प्रगति की है। हमारे धार्मिक संगठनों की सदस्य-संख्या में वृद्धि हुई है[२]। जनतन्त्री भावना के विकास और नये नये कानूनों और न्यायालयों के निर्णयों के कारण, जातीय भेद की भावना कम हो गयी है। अनेक पुस्तकों की लोकप्रियता बढ़ती जाने से प्रकट होता है कि नैतिक और आत्मिक गुणों का आदर बढ़ रहा है।

परन्तु साथ ही हमारे विचार और व्यवहार पर अनेक घटनाओं का असाधारण प्रभाव पड़ा है। एक ही पीढ़ी में हमें दो विश्व-युद्धों सामान का

---

२. "दि क्रिश्चिअन हेरल्ड" के जुलाई १९५० के अंक में प्रकाशित हुआ था कि १९४९ में अमेरिका की ५४ प्रतिशत आबादी किसी न किसी चर्च से सम्बद्ध हो चुकी थी। यह अनुपात १८८० में २० प्रतिशत, १९०० में ३५ प्रतिशत, १९३० में ४० प्रतिशत और १९४० में ४९ प्रतिशत था। गत २० वर्षों में देश की आबादी भी ५ करोड़ से बढ़कर ८ करोड़ हो गयी।

करना पड़ गया। आर्थिक अपव्यय के कारण मन्दी आगयी। जो लोग सभ्य समझे जाते थे उनमें पुनः असभ्यता का प्रादुर्भाव हो गया। और वैज्ञानिक तथा यान्त्रिक सफलताओं से भी बहुतेरी सामाजिक समस्यायें खड़ी हो गयीं। आज दुनिया में बात बात पर लोहा बजने लगता है। इसलिए अरक्षा का भय बहुत बढ़ गया है। बड़े बूढ़ों की चिन्ता और बेचैनी बालकों और युवकों में भी दीखने लगी है।

महायुद्ध और उसके परिणाम : सदाचार के मामलों में वर्तमान विभ्रम का एक कारण यह है कि द्वितीय विश्व-युद्ध ने आचार में आस्थाओं को कुण्ठित अथवा विकृत कर दिया। बहुत से लोग सदाचार पर आधारित ऐसे निर्णयों की जिम्मेवारी लेने से कतराने लगे जिनका परिणाम दूरव्यापी होता। युद्ध-काल की क्रूरता और युद्ध-प्रियता युद्धोत्तर-काल के भी नागरिक जीवन में चली आयीं। परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि युद्ध की परिस्थितियों ने आदर्श-परायणता, साहस और सहयोग की भावनाओं को भी बढ़ावा दिया। बहुत से अमेरिकियों को अन्य राष्ट्रों का परिचय युद्धकाल में अधिक भलीभांति हुआ और वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को पहले की अपेक्षा अधिक समझने लगे। परन्तु महायुद्ध और उससे सम्बद्ध घटनाओं ने सदाचार के पुनर्विकास का काम भी बढ़ा दिया।

व्यक्ति और संस्थायें : आज की राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं की विशालता के कारण भी कभी कभी वैयक्तिक उत्तरदायित्व जोखिम में पड़ जाता है। उदाहरणार्थ, बड़े बड़े कारखानों में जिन हालात में काम होता है उनके कारण वैयक्तिक उत्तरदायित्व की भावना कम हो जाती और कारीगर का अपनी कुशलता का अभिमान तथा आत्मसन्तोष कुण्ठित हो जाता है। राजनीतिक जीवन में भी इसी प्रकार के परिवर्तनों ने बहुत से नागरिकों में वैयक्तिक कर्त्तव्य-भावना को निर्बल कर दिया है। बड़े बड़े औद्योगिक और शासनिक संगठनों में व्यक्ति का महत्व चुटकी भर में नष्ट हो जाता है। यह समझकर कि मेरे काम का कोई विशेष महत्व तो है ही नहीं, व्यक्ति सदाचार के उन विकल्पों के प्रति उदासीन होने लगता है जो कि एक कर्मचारी या नागरिक की हैसियत में उसके सामने आते हैं।

फुरसत : पिछले कुछ वर्षों में उत्पादन के साधन अधिक उन्नत हो जाने के कारण बहुत-से लोगों का काम का समय घट गया और फुरसत का समय बढ़ गया। यान्त्रिक उपकरणों के प्रयोग के कारण, घरों, दफ्तरों और

कारखानों में बहुतसे काम कठिन और नीरस नहीं रहे। मोटरकार, रेडियो, टैलिविज़न और सिनेमा-चित्र में उन्नति के कारण फुरसत के समय मनोरंजन के साधन बढ़ गये। इस प्रकार, सुखी व समृद्ध जीवन बिताने के भौतिक साधन अति प्रचुर हो गये।

दूसरी ओर, फुरसत का समय अधिक मिलने पर भी हम आत्मचिन्तन, आत्मविकास अथवा समाज-सेवा के कामों में अधिक समय नहीं लगाते, प्रत्युत ज्यों-ज्यों पड़ोसी की चौपाल अथवा मित्रमंडली का स्थान पेशा-वर नाचघर लेते जाते हैं, ज्यों ज्यों मित्रों की गपशप टैलिविज़न का आनन्द लेने के लिए समाप्त होती जाती है; ज्यों ज्यों टैलिफोन के कारण हम मुट्ठी भर आटे के लिए भी पड़ोसिन के घर की अपेक्षा परचूनिये की दूकान को अधिक समीप मानते जाते हैं; ज्यों ज्यों मोटरकार हमारे मेल-जोल के दायरे को मुहल्ले या गाँव की सीमा से आगे फैलाती जाती है, त्यों त्यों हमारे अकृत्रिम निजी सम्बन्ध कृत्रिम तथा अ-निजी होते जाते हैं, और व्यक्ति बहुधा सामाजिक कार्यों में भाग लेने अथवा उन्हें करने के स्थान पर उनका दर्शक मात्र बनता जाता है।

घर : हमारी परिवार-व्यवस्था में भी परिवर्तन हो गया है। उसमें धीरे-धीरे बड़ों के शासन का स्थान आत्मविश्वास, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, और परिवार के सदस्यों में परस्पर मित्रता के भाव लेते जाते हैं। दूसरी ओर ज्यों-ज्यों माता पिता का नियन्त्रण शिथिल होता जाता है त्यों-त्यों परिवार का वह प्रभाव भी घटता जाता है जो चरित्र के स्थायी बनाने में सहायक हो सकता था। और समाज का यह दुर्भाग्य ही होगा, यदि आदेश और शासन का अपना अधिकार समाप्त होने के साथ ही माता-पिता यह समझने लगें कि बालक को रास्ता दिखाने की उनकी जिम्मेवारी भी समाप्त हो गयी। जीवन का सामना स्वयं करने से पहले, बालकों को अच्छे उदाहरणों, निर्देश, नियन्त्रण सुरक्षा, और प्रेम तथा प्रति-प्रेम की आवश्यकता पड़ती है। और ये सब आवश्यकतायें अच्छे घर या परिवार में ही पूरी हो सकती हैं।

जिन सामाजिक परिवर्तनों का स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ता है उनके कारण युवकों में नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करने की समस्या और भी जटिल होती जाती है। उदाहरणार्थ, विज्ञापनों, नाटकों और सिनेमाओं में, और अन्यत्र भी, काम-वासनाओं पर अधिक बल देने का प्रभाव युवकों पर अनिष्ट ही होता है। तलाकों और पति-पत्नियों द्वारा एक दूसरे को छोड़ देने की घटनाओं में वृद्धि भी ऐसा ही सामाजिक परिवर्तन है।

पारिवारिक झगड़ों का परिवार के सदस्यों, विशेषतः बालकों के मन पर, अवश्य बुरा प्रभाव पड़ता है।

वर्तमान संघर्ष : जैसा कि कमीशन ने अन्यत्र[३] भी बतलाया है, इस समय संसार के राष्ट्र एक दूसरे के तीव्र विरोधी बने हुए हैं। इस विरोध का मूल कारण आचार सम्बन्धी यह प्रश्न है कि मानव व्यवहार का आदर्श क्या होना चाहिए। इस प्रश्न पर राष्ट्रों में इतना भारी मतभेद है कि उसका अन्त शायद कभी होगा ही नहीं।

एक प्रकार, संसार के मतभेद का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति का आन्तरिक मतभेद है। यदि व्यक्तियों में, बल और पशुता के भावों को नियन्त्रित करने में समर्थ सदाचार और संयम के गुण विकसित न होंगे तो शायद उसका एकमात्र विकल्प यह होगा कि निर्बल पर बलवान् का, बहुतों पर थोड़ों का, और साधारण जनों पर स्वेच्छाचारियों का राज हो जायगा। सचमुच आज के संसार में स्वतन्त्रता की रक्षा, अंशतः सैनिक बल और सामरिक निपुणता की, अंशतः राजनीतिक दूरदर्शिता और सूझ-बूझ की, और अंशतः आर्थिक तथा औद्योगिक संघटन की समस्या बन गयी है। परन्तु साथ ही, यह नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास की समस्या भी है। और सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात होगा कि इस समस्या का रूप सदा से यही रहा है।

सारांश यह है कि हम विचार चाहे गत महायुद्धों के सामाजिक परिणामों पर, चाहे कामगारों की अभिलाषायें पूरी न हो सकने पर, चाहे शासनों की बढ़ती हुई उलझनों पर, चाहे घर और पारिवारिक जीवन की अवस्थायें बदल जाने पर, और चाहे आज के अन्तर्राष्ट्रीय तनाव पर करें, नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास पर ध्यान देने की आवश्यकता बार-बार सामने आजाती है। अमेरिकी लोगों को सदाचार के सम्बन्ध में अननुभूत-पूर्व विविधता और जटिलता के निर्णय करने पड़ेंगे। नैतिक और आत्मिक गुणों के विषय में निरन्तर चिन्तन आज शिक्षण की सर्वोपरि समस्या बन गयी है।

---

३. देखो "राष्ट्रीय-शिक्षण-संघ" (Eational Education Association.) और "स्कूल-प्रबन्धकर्ताओं के अमेरिकी संघ" (American Association of School Administrators) के "शिक्षण-नीतियों के निर्धारक कमीशन" (Educational Policies Commission) द्वारा लिखित "American Education and International Tension" (अमेरिकी शिक्षण और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव) १९४९ का पृष्ठ '५४।

आगे का मार्ग

ऊपर जिन प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है उनके कारण अमेरिका में लोगों और स्कूलों को नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण देते हुए भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। परन्तु आज का युग, संकटों का युग होने के कारण ही, अनेक अवसरों का युग भी है।

विचार करने पर, कम से कम तीन विकल्प हमारे सामने आते हैं। प्रथम, भारी कठिनाइयों के कारण हम नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण देना छोड़ दें। द्वितीय, औद्योगिक क्रान्ति के कारण हुये परिवर्तनों की उपेक्षा करके हम भूत-काल की ओर लौट जायें और तृतीय, आज की पीढ़ी को आत्मचिन्तन और इच्छा शक्ति से सम्पन्न करके हम उसे नैतिक और आत्मिक गुणों का सम्मान करने का अभ्यासी बना दें।

परन्तु इस राष्ट्र के सरकारी स्कूल केवल एक विकल्प अपना सकते हैं। पीछे लौटना उनके लिये असम्भव है। आत्मसमर्पण की बात वे सोच भी नहीं सकते। आगे का मार्ग कठिन तो है, परन्तु हमारे लिये एकमात्र वही खुला हुआ है। सरकारी स्कूलों को अपने यहाँ पढ़ने वाले प्रत्येक बालक और युवक में ऐसे गुणों की स्थापना करने का अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिए। जिनसे कि वह जो कुछ सीखे वह सब सम्मानपूर्ण और सोद्देश्य बन जाय।

सरकारी स्कूलों को आगे बढ़ना हो तो उन्हें कुछ समस्याओं का सामना ईमानदारी से करना पड़ेगा। मार्ग कठिन होगा। परन्तु उन्हें हवाई महल खड़े करना और मार्ग में विघ्नकारी समझौते करना छोड़कर, उस पर ही आगे बढ़ना होगा। हमें उन गुणों को स्पष्ट कर लेना चाहिये जो अमेरिकी जीवन का आधार हैं। हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि इन गुणों का पोषण किन साधनों से होता है। हमें जान लेना चाहिए कि सरकारी स्कूल इन गुणों का विकास प्रभावशाली रूप में किस प्रकार कर सकते हैं। और अन्त में हमें यह भी पता लगाना चाहिये कि इस शिक्षा में समाज की अन्य किन शक्तियों से सहायता ली जा सकती है। अगले चार अध्याय इन्हीं चारों समस्याओं पर विचार के अर्पित किये जायेंगे।

द्वितीय अध्याय

गुण

द्वितीय अध्याय

गुण

अमेरिका के लोगों पर प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि उन्हें, तानाशाही देशों के लोगों के समान, अपने समाज के आधारभूत गुणों की कोई स्पष्ट कल्पना नहीं है। यह आक्षेप सत्य हो चाहे न हो, यह प्रश्न तो महत्वपूर्ण है ही कि उन नैतिक और आत्मिक गुणों पर अमेरिकी लोगों की परस्पर पूर्ण सहमति है या नहीं, जिनका वे अपने जीवन में पालन करना चाहते, और जिन्हें वे अपने बालकों के चरित्र और आचार का अंग बनाना चाहते हैं।

अमेरिकी जीवन के बाह्य रूप का अध्ययन करने से इन गुणों का परिचय भली प्रकार नहीं हो सकता। अमेरिका भी नैतिक और आत्मिक गुणों के अपने उच्चतम आदर्श तक नहीं पहुंच सका है। परन्तु अपने आचरण में त्रुटियों और परिवर्तनों के बावजूद, प्रायः सब अमेरिकी कुछ गुणों को मानते हैं, और अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और निजी प्रश्नों का निर्णय करने के लिए उन्हीं गुणों का कसौटी के रूप में प्रयोग करते हैं।

कुछ गुणों पर अमेरिकियों की परस्पर सहमति है

इस कमीशन से पूर्व भी अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं ने अमेरिकी समाज के गुणों की सूची बनाने का यत्न किया है। यदि हमारा समाज सर्वथा स्थिर होता तो शायद इन गुणों की बार-बार परिगणना करने की आवश्यकता न पड़ती। हमारे समाज की इष्ट विशेषताओं को एक ही बार सदा के लिए कहीं लिखकर रख दिया जाता, और जब कभी आवश्यकता पड़ती उन्हें देख लिया

जाता । परन्तु यह प्रक्रिया अमेरिका सरीखे गतिशील समाज के लिए उपयुक्त नहीं है । इसलिए यह कमीशन ऐसी कोई कल्पना नहीं कर सकता कि इन गुणों की परिगणना करके वह कोई मौलिक, पूर्ण अथवा स्थायी काम कर डालेगा । अपितु, यह विश्लेषण इसलिए किया जा रहा है कि यह उन नैतिक और आत्मिक गुणों के स्पष्टीकरण में सहायक होगा, जिनके आधार पर अमेरिकी लोग अपने निजी जीवन, सामाजिक कार्यों और सरकारी स्कूलों को चलाने पर सहमत हैं ।

इनमें से कई गुणों का अमेरिका के संविधान और "नागरिक अधिकारों के बिल" में राजनीतिक दृष्टि से उल्लेख किया जा चुका है । यद्यपि वे घोषणाएं किन्हीं धार्मिक संस्कारों अथवा प्रथाओं की भाषा में नहीं की गयी थीं, फिर भी सब मुख्य-मुख्य धर्मों के अनुयायियों को अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों में उनका समर्थन मिल सकता है ।

१. मनुष्य का व्यक्तित्व – आधारभूत गुण

यहां जिन गुणों की चर्चा की जायगी उनमें प्रथम गुण, आगे वर्णित समस्त गुणों का आधार है । अमेरिकी जीवन में समस्त नैतिक और आत्मिक गुणों का आधार मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वोपरि महत्व है ।

ईसाई और अन्य बड़े-बड़े धर्मों में सब शिक्षाओं का आधार मनुष्य की अन्तर्निहित योग्यता को माना गया है । प्रत्येक मनुष्य सदाचार का निर्णय करने की योग्यता और तत्सम्बन्धी उत्तरदायित्व की भावना का विकास अपने में कर सकता है । यह सिद्धान्त प्रत्येक प्रकार के अत्याचार का विरोधी है । इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने ही प्रयत्नों से, सुरक्षा की भावना और दैनिक जीवन में उपस्थित होने वाली समस्याओं का सामना करने की सामर्थ्य प्राप्त करने का अवसर सदा मिलते रहना चाहिए । इसका अर्थ यह भी है कि मनुष्य अपनी इन आवश्यकताओं की पूर्ति उन सामाजिक सम्बन्धों की सहायता के बिना नहीं कर सकता जिनका आधार नैतिक और आत्मिक गुण होते हैं ।

शिक्षण की भाषा में, इस गुण के विकास के लिए स्कूल ऐसे होने चाहिएं कि उनमें प्रत्येक बालक को मानव समाज और मानव संस्कृति की सब परम्पराओं का लाभ तो मिले ही, अपने शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और

आत्मिक विकास का अवसर भी उपलब्ध हो। इस गुण से, स्कूलों के संघटन और शिक्षण की उन योजनाओं की पुष्टि होती है जो व्यक्तियों की विविध आवश्यकताओं और अभिलाषाओं को समझ और परख कर उनकी पूर्ति के लिए बनायी जाती हैं। शिक्षण का लक्ष्य, प्रत्येक बालक की योग्यता को परख और पहचान कर, उसकी सृजनात्मक सामर्थ्य को विकसित करना और उसे ऐसा अनुभव करने के लिए उत्साहित करना है कि वह स्वयं उपयोगी काम कर सकता है, वह समाज का एक अंग है, और समाज को उसकी आवश्यकता है। यह गुण स्वेच्छाचारिता की प्रवृत्ति को मन्द कर देता है। यह योग्य और बलवान् व्यक्तियों को ऊंचा स्थान देने की अपेक्षा, उनमें नैतिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करता है। यह प्रत्येक व्यक्ति में आत्मसम्मान और निजी ईमानदारी की गम्भीर भावना जागृत करने का यत्न करता है।

२. नैतिक उत्तरदायित्व

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, प्रत्येक व्यक्ति को अपने आचरण के परिणामों का उत्तरदायित्व अनुभव करना चाहिए।

नैतिक उत्तरदायित्व और आत्मानुशासन, परिपक्वता के चिह्न हैं। छोटा बालक बहुधा बड़ों से मार्ग-निर्देश की अपेक्षा करता है। परन्तु माता-पिता और शिक्षक, यदि बालक को स्वयं निर्णय करने की कठिनाइयों से और उस निर्णय के परिणामों से अनावश्यक रूप में बचाते रहें, तो दूसरों का सहारा लेने का उसका बाल-स्वभाव बड़ा होने पर भी बदलेगा नहीं। यों तो समय समय पर प्रत्येक व्यक्ति को अपने माता-पिता, मित्र, शिक्षक, चिकित्सक अथवा धर्म-गुरु की सलाह की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु जो व्यक्ति जीवन की समस्याओं का सामना स्वयं करने में असमर्थ होता है वह दूसरों के चिन्तन पर निर्भर रहने लगता, और अपने आचरण के परिणामों के लिए भी दूसरों को दोष देने लगता है। वह अपना नैतिक उत्तरदायित्व समझने के स्थान पर, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं के बने-बनाये नियमों का सहारा लेने लगता और उन्हीं संस्थाओं का आश्रित बन जाता है जो उसे बतलायें कि उसे क्या मानना और क्या करना चाहिए। उसके जीवन की असफलताय, उसके चरित्र को भावी कठिनाइयों का सामना करने म समर्थ बनाने के स्थान पर, उसमें उनसे बचने और अपने को निर्बल समझने की आदत डाल

देती हैं। इस आदत के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास रुक जाता है। उसम नागरिकता के उस उत्तरदायित्व का विकास नहीं होने पाता जो कि जनतन्त्र के लिए आवश्यक है; और उसके गुण विकृत हो जाते हैं।

अच्छे स्कूल बालकों और युवकों को आगे बढ़ने में सहायता देते हैं। बचपन में एक ओर तो बालक की रक्षा के लिए उचित अधिकार का प्रयोग करना चाहिए और दूसरी ओर कुछ जिम्मेवारियां भी उस पर डालनी चाहिएं। इससे उसमें सुरक्षा और निजी ईमानदारी की भावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं, और वह परिपक्वता की ओर अग्रसर होने लगता है। युवा होने तक, व्यक्ति को बहुत कुछ स्वावलम्बी हो जाने के अतिरिक्त, अपना सामाजिक उत्तरदायित्व समझने के योग्य भी बन जाना चाहिए। उसे समझना चाहिए कि मनुष्य का व्यक्तित्व सर्वोपरि मानने के आदर्श में, आत्मविश्वास और अन्य व्यक्तियों के साथ सम्मान तथा विचार-पूर्वक व्यवहार करने का कर्त्तव्य दोनों सम्मिलित हैं। इसलिए परिपक्वता प्राप्त कर लेने पर मनुष्य ऐसे आत्मानुशासन में बंधा रहेगा जिसके कारण वह अपने साथ तो आन्तरिक दृढ़ता से, और दूसरों के साथ नम्रता से, व्यवहार कर सकेगा।

३. संस्थाएं मनुष्य की सेवक हैं

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, संस्थाओं की सृष्टि मनुष्य-मात्र की सेवा के लिए की जाती है।

गार्हस्थ, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं का आदर, उनके संस्था होने मात्र के कारण नहीं, अपितु इस कारण किया जाता है कि वे मनुष्य के नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में सहायक होती हैं। परिवार की संस्था समाज को स्थिर रखने में सहायक होती और बालकों की रक्षा करती है। जो परिवार, शासन और अधिकार के स्थान पर, प्रेम के सूत्र में बंधा रहता है उसमें स्वस्थ मानव सम्बन्धों का विकास अधिक अच्छे प्रकार से हो सकता है। इसी प्रकार स्कूलों और अन्य संस्थाओं के अस्तित्व की उपयोगिता यही है कि वे व्यक्तियों की उन्नति, सुख और सुविधा में सहायक होती हैं। "शासन-तंत्रों की स्थापना" भी, जैसा कि 'स्वतन्त्रता की घोषणा' में बतलाया गया है, "मनुष्यों में उनके अनपहरणीय अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए ही होती है।" इस प्रकार, सब सामाजिक संस्थाएं जनता की सेवा करने का साधन मात्र

हैं। उनका महत्व जनता से अधिक कभी नहीं होता। मनुष्य की सृष्टि व्रतों या उपवासों के लिए नहीं की गयी थी। संस्थाओं को जहां तुच्छ या क्षणिक कारणों से बदल डालना उचित नहीं, वहां उनमें उनके सदस्यों की आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार, सुधार की गुंजाइश भी रहनी चाहिए।

सभी जानते हैं कि सामाजिक संस्थाएं परिवर्तन पसन्द नहीं करतीं। शिक्षण का एक बड़ा उद्देश्य यह भी है कि वह लोगों को यह जांचते रहने के लिए उत्साहित करे कि वर्तमान संस्थाएं उनकी वर्तमान और भावी आवश्यकताएं पूरी भी कर सकती हैं या नहीं। निःसन्देह, तानाशाही देशों के स्कूलों में यह उद्देश्य पूरा कर सकने की शक्ति नहीं है। परन्तु हमारे देश के स्कूल, यदि लोगों में ऐसी बुद्धि, कुशलता और प्रवृत्ति उत्पन्न न करें जिससे कि जन-मस्तिष्क सामाजिक संस्थाओं में नैतिक और आत्मिक गुणों की आवश्यकताओं के अनुसार सुधार करता रह सके, तो वे अपने एक उचित कर्त्तव्य की उपेक्षा करने के दोषी माने जायेंगे। स्कूलों को इससे भी आगे बढ़ कर, नवयुवकों में ऐसी बलवान् भावना जागृत करनी चाहिए कि वे गांव, मुहल्ले या नगर के लाभ को अपनी जिम्मेवारी समझें, और उसकी निःस्वार्थ सेवा करने के लिए स्वेच्छापूर्वक तत्पर रहें।

४. परस्पर सहमति

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि रखते हुए, बल-प्रयोग की अपेक्षा परस्पर सहमति से निर्णय करना अधिक अच्छा ह।

'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के विचार के विपरीत, जीवन की सब दिशाओं में स्वेच्छया सहयोग की भावना अति आवश्यक है। अमेरिकी मन्तव्यों के अनुसार, किसी एक दल को अपने स्वार्थ के लिए जनता की इच्छा का निरादर करने का अधिकार नहीं है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि बल का प्रयोग किसी भी या सभी परिस्थितियों में वर्जित मान लिया गया है। जो शान्तिपूर्ण उपायों से न मानें उन्हें नियन्त्रित करने के लिए बल का प्रयोग आवश्यक हो जाता है, परन्तु वह मानव-भावनाओं द्वारा विनमित, कानून द्वारा मर्यादित और न्याय द्वारा अनुमोदित होना चाहिए। सामूहिक निर्णय परस्पर सहमति से करने और अमल में लाने का सिद्धान्त जोवन के सभी कार्यों में लागू होता

है। समूह चाहे करोड़ों नागरिकों का हो, चाहे सहस्रों विद्यार्थियों का और चाहे सैर को निकले हुए तीन मित्रों का, सिद्धान्त वही रहता है।

अमेरिकी मन्तव्यों और गुणों के इस तत्व की पूर्ति के लिए शिक्षण का कार्यक्रम ऐसा बनाना पड़ता है जिसमें मैत्रीपूर्ण सहयोग के अवसर स्वयमेव बार बार मिलते रहें। इसका अभिप्राय यह नहीं कि स्कूलों में किसी नियम का पालन न हो और गड़बड़ मचा करे। इसके लिए आवश्यक होता है कि जिन लोगों को नियन्त्रण में बांध कर रखना हो उन्हें, उनकी परिपक्वता के अनुसार, उसके कारण समझा दिये जायं, नियन्त्रण तभी किया जाय जब वह समूह के लाभ के लिए आवश्यक हो, और वह मानव-स्वभाव की निर्बलताओं तथा अल्पमत व बहुमत के अधिकारों के अनुसार मृदु या कठोर कर लिया गया हो। वाद विवाद, समझौते, बातचीत और मतदान का प्रयोग जितना किया जायगा उतना ही समाज को शिक्षित तथा जानकार रहने की आवश्यकता पड़ेगी। सभी नागरिकों का मताधिकार होना अच्छा है, मताधिकार का प्रयोग बिना किसी भय के हो सकना अधिक अच्छा है, और सब नागरिक इस अधिकार का प्रयोग करें यह और भी अच्छा है। परन्तु एक बात इन सभी से अधिक आवश्यक है। वह यह कि जो नागरिक मताधिकार का प्रयोग करें वे विवादास्पद प्रश्नों से परिचित हों और उनका निर्णय संयम-पूर्वक कर सकें। जिन व्यक्तियों ने हमारे देश में शासन को स्थापना की थी उन्होंने यह कल्पना पहले से कर ली थी कि क्रान्ति तथा सार्वजनिक विवाद की अग्नि में तप कर जो समाज-व्यवस्था यहां बन रही है उसके साथ शिक्षण के सम्बन्ध क्या होंगे। वे जानते थे कि शिक्षण से ही वे आदर्श और ज्ञान उपलब्ध होंगे जिनसे राष्ट्र की स्थिरता का निश्चय हो सकेगा।

५. सत्य-निष्ठा

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, मानव-मन को, ज्ञान और मत-स्वातन्त्र्य के साथ सम्पर्क द्वारा, स्वतन्त्र रखना चाहिए।

अपनी परम्पराओं और उपेक्षावृत्ति के कारण हम बौद्धिक स्वतंत्रता के लाभों को भली भांति नहीं समझ पाये। मानव इतिहास बतलाता है कि अपनी बात कह सकने, यथामति तथा यथाभ्यास धर्माचरण कर सकने, और ज्ञान

तथा विविध मतों का लाभ उठा सकने का अधिकार मनुष्य को हाल में ही प्राप्त हुआ है। आज भी भूमंडल के वहुत अधिक लोग इस अधिकार से वंचित हैं। तानाशाही की प्रवंचना-पूर्ण चालों के कारण यह विशेष रूप से आवश्यक हो गया है कि सत्य का आदर करने का अभिप्राय अधिक भली प्रकार समझ लिया जाय, उसका अधिक सम्मान और उस पर अधिक निरन्तरता से आचरण किया जाय। नैतिक गुणों के विषय में हमारी दृष्टि यही है। परन्तु तानाशाही देशों के ऐसे काम इसके लिए भयावह हैं जैसे कि सब स्वतंत्रताओं को नष्ट करने के लिए स्वतंत्रता को विकृत कर देना, क्रिया को व्यर्थ करने के लिए वादविवाद का दुरुपयोग करना, सेन्सर करने का प्रयत्न और विचारों का नियन्त्रण, और उपद्रवी भीड़ अथवा अत्याचारी के शासन के सामने आत्मसमर्पण। जहां मनुष्य को यह भय हो कि अपने दिल की बात कहने पर उसे दण्ड दिया जायगा वहां उसे ऐसी ही वात कहने का प्रलोभन होगा जिससे वह बचा रहे, अपनी अन्तरात्मा की सच्ची बात नहीं। इसलिए जहां बौद्धिक स्वतंत्रता नहीं होती वहां साधारणतया सत्य का आचरण करने वाले लोग भी छल-कपट का व्यवहार करने लगते हैं।

सरकारी स्कूलों में नवयुवकों को सत्य के अन्वेषण का, विभिन्न मतों में तुलना करने का और विवादास्पद प्रश्नों को तर्क की कसौटी पर कसने का अभ्यास करवाना चाहिए। इस प्रकार की बौद्धिक ईमानदारी पर अमल करना आसान नहीं है। इसका अभ्यास बालकों को, जो वे चाहें सो करने देने से, नहीं हो सकता। जिस प्रकार स्कूल में वालकों को अधिकार के मनमाने प्रयोग का विरोध करने की आदत डलवायी जाती है उसी प्रकार उन्हें यह भी सिखलाना चाहिए कि वे तर्क-संगत विवाद और विचार की पद्धति का समर्थन करें। स्कूल में बौद्धिक स्वतंत्रता के अनुचित उपयोग की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। संस्थाओं, रीति रिवाजों, सरकारों और उनके कर्मचारियों के गुण दोषों की परीक्षा स्वतंत्रता-पूर्वक करने के लिए उत्साहित करते हुए भी, स्कूल में इस कार्य के लिए केवल सत्य और औचित्य का ही प्रयोग होना चाहिए।

६. योग्यता का आदर

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, सब व्यवहारों में मन और चरित्र की उच्चता तथा सृजन की योग्यता का आदर करना चाहिए।

नागरिक कानून की दृष्टि से सब व्यक्तियों को समान अधिकार प्राप्त हैं, और सब व्यक्तियों पर सदाचार की कसौटी समान रूप से लागू होनी चाहिए, फिर भी मनुष्य मनुष्य की मानसिक और आत्मिक योग्यताओं में अन्तर होता है। यद्यपि "सब मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं," जैसा कि 'स्वतंत्रता के घोषणापत्र' में स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में कहा गया है, तथापि इस बात को न मानना मूर्खता ही होगी कि मनुष्य मनुष्य में अन्तर होता है। हमारे समाज को प्रत्येक प्रकार की सच्ची योग्यता का आदर, औरों की अपेक्षा अधिक करना चाहिए; हां, यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी को भी केवल उसके धन, वंश या अन्य आकस्मिक कारणों से झूठमूठ बड़ा न बना डाला जाय। सर्व-साधारण का लाभ बड़ी हद तक इस बात पर निर्भर रहता है कि हमारे समाज में अधिकार और विश्वास के ऊंचे पदों पर, विद्वान्, बुद्धिमान् और ईमानदार प्रतिनिधियों को प्रतिष्ठित करने का कितना ध्यान रखा जाता है। किसी को उन्नति का पूरा अवसर न देना मनुष्यता का जितना बड़ा निरादर है उतना ही उत्कृष्ट-गुणालंकृत व्यक्तियों का विकास रोक देना भी है।

शिक्षण की भाषा में इस गुण का अर्थ यह होता है कि सब बालकों की योग्यताओं का लेखा सावधानता-पूर्वक रखा जाय। इसका अर्थ यह भी है कि हम अपने नेताओं और प्रतिनिधियों का चुनाव करते हुए यह ध्यान अवश्य रखें कि वे कितने ईमानदार और ठीक निर्णय करने में कितने समर्थ हैं। इसका अर्थ है कि व्यक्तियों को सिखलाया जाय कि यह देखने का उत्तरदायित्व उनका है कि नेता के पद पर उच्चतम प्रतिभा, विद्या और चरित्र के ही लोग प्रतिष्ठित हों। इसका अर्थ है कि ऊंची प्रतिभा वाले और औसत या निर्बुद्धि, दोनों प्रकार के, विद्यार्थियों पर व्यक्तिशः ध्यान देना चाहिए। स्कूल को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, — निर्माण-कुशलता, सामाजिक और नागरिक नेतृत्व, साहित्यिक और कलामय सृजन, वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, शारीरिक स्वास्थ्य और कार्य-शक्ति और वैयक्तिक सत्याचरण में — योग्यता की वृद्धि को उत्साहित और समादृत करना चाहिए।

७. नैतिक समानता

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, सबको सदाचार की एक-सी कसौटी से परखना चाहिए।

गुणों की अमेरिकी व्यवस्था में अन्य कोई तत्व इतना स्पष्ट नहीं है जितना कि यह दृढ़ विश्वास कि किसी भी व्यक्ति को यह नैतिक अथवा स्वयंसिद्ध अधिकार नहीं है कि वह दूसरों को हानि पहुंचाये, तंग करे, उन पर शासन करे या उनसे लाभ उठाये। सभी बड़े धर्मों ने इसे बड़ा गुण माना है कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि कोई दूसरों से अपने साथ करने की अपेक्षा रखता हो[१]। टामस जैफ़रर्सन ने अपने प्रथम प्रारम्भिक भाषण में इस घोषणा को विशेष राजनीतिक महत्व दिया था कि "कोई किसी भी राज्य, धर्म और राजनीतिक दल का क्यों न हो, सबके साथ समान और सच्चा न्याय किया जायगा।" अमेरिकी लोगों के चरित्र की एक विशेषता यह है कि वे एक ओर तो न्याय और उचित व्यवहार की उत्कट खोज में रहते हैं, और दूसरी ओर दब्बूपन या मिथ्याभिमान दोनों का विरोध करने को तुरन्त तैयार हो जाते हैं।

स्कूल के जीवन की भाषा में, इस गुण का विकास करने के लिए सर्वत्र समानता, सहानुभूति और सहायता का व्यवहार करने के साथ साथ, भ्रातृभाव और मित्रता की भावनाओं की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए परिवार, जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, अथवा आर्थिक स्थिति के आधार पर किये गये भेद-भावों को समाप्त कर देना चाहिए। स्कूल को चाहिए कि वैयक्तिक विभिन्नताओं को, जातीय, गुप्त अथवा व्यक्तियों के परस्पर-विरोधी गुट बनाने का आधार न मानकर, सामान्य जीवन को समृद्ध बनाने का साधन माने। ऐसी भावना का विकास करना चाहिए जिससे अन्याय, कठोरता, विशेष रियायत, अत्याचार, दब्बूपन, और अवसर के अपहरण के विरुद्ध तीव्र रोष उत्पन्न हो। बालकों के सम्मुख, सबको समान अवसर देनें वाले परिवार का और शान्ति तथा न्याय के राज्य में रहने वाले स्वतन्त्र लोगों के संसार का आदर्श उपस्थित करना चाहिए। स्कूल का जीवन इन आदर्शों का पोषक होना चाहिए।

---

१. ईसाइयत—"जैसा तुम चाहो कि और लोग तुम्हारे साथ करें तुम भी औरों के साथ वैसा ही करो।" बौद्ध—"मित्रों और परिवारों से वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने साथ करते हो।" कन्फ्यूशियन—"अपने साथ जो व्यवहार तुम पसन्द नहीं करते वह दूसरों के साथ मत करो।" हिन्दू—"कोई किसी के साथ वह बरताव न करे जो उसे अपने साथ अप्रिय होगा।" यहूदी—"अपने पड़ोसी से भी उतना ही प्रेम कर जितना तू अपने से करता है।"

८. भ्रातृभाव

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, भ्रातृभाव की भावना को स्वार्थ की भावनाओं से ऊपर रखना चाहिए।

हम नागरिकों का एक ऐसा आत्मनिर्भर और परिश्रमी समाज संगठित करना चाहते हैं जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको और अपने पर आश्रित व्यक्तियों को, अपने श्रम से सुखी और स्वस्थ रखने का यत्न करे। परन्तु हममें से जो, अपनी किसी त्रुटि के कारण नहीं, अपितु अज्ञान या निर्बलता या अवसर के अभाव या अन्य किसी दुर्भाग्यवश ऐसा न कर सकें उनकी चिन्ता रखना सभी नागरिकों का अनिवार्य और नैतिक कर्तव्य है। वैयक्तिक सहायता द्वारा हो या स्वेच्छया सहयोग द्वारा या जनता के कोष द्वारा, इस उत्तरदायित्व का पालन होना ही चाहिए। भ्रातृभाव से व्यापक मानव भावना का विस्तार होता और दूसरों के दुःख में सहानुभूति करने का स्वभाव पड़ता है। हमारा आदर्श "गुड समारिटन" (गरीबों और रोगियों की स्वयं सेवा करने) का है, उस आदमी का नहीं जो अपने भाई का संरक्षक बनने न बनने के लिए भी औरों की सलाह लेता फिरे। सभ्यता का आधार औद्योगिक उन्नति हो जाने के कारण, आज अभागे लोगों की रक्षा के लिए सहयोग के कामों का अधिकाधिक बढ़ाना एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। भ्रातृभाव का अर्थ निरी भौतिक सहायता करने से कुछ अधिक है। इसका अर्थ न केवल जरूरतमन्दों के साथ हिस्सा बंटाने की, अपितु अभाव और पीड़ा के कारणों का निवारण करने की तत्परता भी है।

इन कारणों से, सरकारी स्कूलों को, समस्त समाज के लिए विद्यार्थी की उपयोगिता बढ़ाने के साधन के अतिरिक्त, वैयक्तिक सफलता का भी साधन समझना चाहिए। स्कूल वैयक्तिक स्वार्थ की प्रवृत्तियों को मन्द करने तथा समाजसेवा और सहयोग की भावना को बलवान् बनाने के साथ साथ, प्रत्येक व्यक्ति को अपना उत्तरदायित्व अपने सिर लेना भी सिखलाता है। स्कूल, गांव, मोहल्ले या नगर के सब सेवा-भावी रचनात्मक कामों में भाग लेने का उत्साह बढ़ाता और स्वावलम्बी तथा आत्मसम्मानवान् बनने के प्रयत्नों की प्रशंसा करता और उन्हें प्रोत्साहन देता है।

६. सुख की खोज

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, प्रत्येक व्यक्ति को सुख की खोज का यथासम्भव अधिकतम अवसर मिलना चाहिए, परन्तु किसी के ऐसे प्रयत्न दूसरों के इसी प्रकार के प्रयत्नों में बाधक नहीं होने चाहिएं।

"सुख की खोज", 'स्वतन्त्रता के घोषणापत्र' का एक गूंजता हुआ वाक्यांश है। परन्तु सुख क्या है ? निश्चय ही उत्तेजना, प्रभूतता अथवा केवल भौतिक ऐश्वर्य का नाम सुख नहीं। क्षणिक भोगों से मानसिक क्लान्ति और चिन्ता की कुछ क्षण के लिए शांति हो सकती है, परन्तु सुख निश्चय ही इन सब क्षण-भंगुर भोगों से बड़ी किसी वस्तु का नाम है। यद्यपि सुख के लिए अन्न, वस्त्र और आश्रय सरीखी भौतिक वस्तुओं की भी आवश्यकता पड़ती है, परन्तु इनके पर्याप्त परिमाण में मिल जाने के पश्चात् इनका महत्व घट जाता है। यद्यपि हाड़-तोड़ दरिद्रता में सुख के दर्शन नहीं हो पाते, परन्तु अति धन से भी सुख खरीदा नहीं जा सकता। स्थायी सुख की उपलब्धि के मुख्य साधन निजी साधना और दूसरों का प्रेम तथा सम्मान हैं। इस सुख की प्राप्ति के लिए वर्तमान भोगों के त्याग की आवश्यकता पड़ सकती है। उससे भविष्य में प्रभूत और गहन सन्तोष की प्राप्ति होती है। इसके लिए श्रम और त्याग की आवश्यकता भी पड़ सकती है। इस प्रकार, सुख की खोज करते हुए दृष्टि दूरस्थ लक्ष्यों पर रहनी चाहिए।

इसलिए स्कूलों में ऐसी प्रवृत्तियों को अधिक महत्व देना चाहिए जिनसे आत्मा की आवश्यकताएं पूर्ण होती हों और जिनसे शुभ काम करने की प्रेरणा मिले। यह बात साहित्य, संगीत और कला आदि सृजनात्मक प्रवृत्तियों के विविध रूपों के विषय में विशेष रूप से सत्य है। यह उन साधनों के संबंध में भी सत्य है जिनकी सहायता से समाज और संस्कृति की परम्परा-प्राप्त निधि को नाना प्रकार सुन्दरतर बनाया जा सका है। यह स्कूल का ही काम है कि वह इस धनागार का द्वार खोलने के साधन संग्रह करने में प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करे। बालकों को अनुशासन में रखते हुए, उनके सामने समुचित अवसरों पर यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि क्षणिक भोगों का त्याग करके कोई भी व्यक्ति मन और आत्मा की ऐसी साधना कर सकता है कि भविष्य में वह अधिक पूर्ण सुख का उपभोग कर सके। सुख का आधार, बड़े परिमाण में, समाज की स्वीकृति और सहयोग भी होता है।

इसलिए स्कूल में ऐसे गुट नहीं बनने देने चाहिएं और न ऐसे तनाव पैदा होने देने चाहिएं, जिनके कारण कुछ विद्यार्थियों की अन्यों के साथ अमित्रता हो जाय ।

१०. आत्मिक समृद्धि

मनुष्य के व्यक्तित्व को सर्वोपरि मानते हुए, प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के भौतिक सुखों से भी उच्च मानसिक और आत्मिक सुख अनुभव करने का अवसर मिलना चाहिए ।

नैतिक गुणों का प्रभाव प्रधानतया सामाजिक संबंधों में परिलक्षित होता है । परन्तु आत्मिक गुण आन्तरिक भावों को प्रभावित करते हैं । बहुत से लोगों का जीवन ही इन आत्मिक भावनाओं के कारण परिवर्तित हो जाता है । आत्मिक गुणों की प्रेरणा अनेक कारणों से हो सकती है । उदाहरणार्थ, मनुष्य के सृजनात्मक कलामय विचारों से, स्थापत्य-कला के श्रेष्ठ स्मारकों से चिर-समादृत धार्मिक संस्कारों के प्रभाव से, ऐसे वीर पुरुषों का स्मरण करके जिन्होंने मानवता की कोई बड़ी सेवा की हो, तारों अथवा वनस्पतियों का चिन्तन करके, हर्ष अथवा विषाद के सरल प्रदर्शन को लक्षित करके, अपने प्रिय मित्र को मुस्कराते देख कर, कविता और संगीत से, और धार्मिक विश्वास तथा श्रद्धा आदि से । जो व्यक्ति शुद्ध विचार और ऊंचा मन रखते हुए भी इन वस्तुओं से प्रभावित नहीं होता वह अवश्य अपूर्ण है । आत्मा के आन्तरिक जीवन का स्थान, तर्क के बल पर सदाचार में विश्वास करने लगने और सामाजिक कार्यों में कुशलता प्रकट कर देने से, कहीं ऊंचा है । उससे सदाचार के राग-द्वेष-रहित गुणों के साथ प्रेम हो जाता और उनके लिए प्रेरणा प्राप्त होती है ।

आत्मिक गुणों और तत्संबंधी प्रवृत्तियों की प्रेरणा चाहे जिस किसी कारण से मिले, उन्हें विकसित करना सभी अच्छे स्कूलों का परम कर्त्तव्य है । यद्यपि सरकारी स्कूलों के लिए मत-मतान्तरों की शिक्षा देना वर्जित है, परन्तु जैसा कि आगे बतलाया गया है, धर्म के प्रति उनकी कुछ जिम्मेवारियां भी हैं । आत्मिक गुणों के विकास के अन्य भी अनेक मार्ग हैं । कोई भी अच्छा स्कूल, कलाओं को आत्मा के आन्तरिक जीवन का प्रेरक और प्रकाशक मानकर उनके

शिक्षण पर पूरा ध्यान देगा। स्कूल को स्वयं भी सौन्दर्य और सुरुचि का अधिष्ठान होना चाहिए। उससे सौन्दर्य की रुचि परिष्कृत होगी। साहित्य, संगीत और कला में मनुष्य की उत्कृष्टतम कृतियां सबके लिए सुलभ रहनी चाहिएं। इससे सृजन की योग्यता को प्रेरणा मिलेगी और उसका विकास होगा। भौतिक विज्ञान, गणित और समाज-विज्ञान के शिक्षण में आत्मा को समृद्ध करने के अवसर खोजना और उनका उपयोग करना चाहिए। इन सबसे बढ़ कर, स्कूल का जीवन और वातावरण ऐसा रखना चाहिए कि उससे ऊंचे उठने और चरित्रवान बनने की प्रेरणा मिले।

गुण परस्पर सम्बद्ध रहते हैं

इस अध्याय में जिन गुणों का परिचय दिया गया है उन्हे एक दूसरे से पृथक् केवल विश्लेषण के लिए कर दिया है। यों स्कूल की एक ही प्रवृत्ति किसी बालक में एक साथ अनेक गुणों का विकास करने में भी सहायक हो सकती है। किसी बालक को अपने नैतिक उत्तरदायित्व की भावना, अपने को अनुशासन में रखने की आवश्यकता का ज्ञान, संस्थाएं मनुष्यमात्र की सेवक हैं। इस सत्य का अनुभव, और अपने सब साथियों को समान मानने का अभ्यास, स्कूल की किसी प्रवृत्ति से एक साथ भी हो सकता है। जो बालक अपने स्कूल की कार्यकर्ता-सभा में यह सुझाव देता है कि अल्पसंख्यक दल के किसी साथी से खेलों के पृष्ठ का सम्पादक बनने के लिए कहा जाय, वह नैतिक समानता, योग्यता का आदर, भ्रातृ-भाव, बौद्धिक स्वतन्त्रता, सुख की खोज और सबको अवसर देने के गुणों का उदाहरण एक साथ उपस्थित कर देता है।

गुणों में परस्पर विरोध नहीं होने देना चाहिए

जीवन में बहुधा अनेक नैतिक निर्णय एक साथ करने पड़ जाते हैं। साधारणतया ये निर्णय दो प्रकार के होते हैं।

प्रथम प्रकार का निर्णय शायद अति साधारण और निश्चय ही अति सुगम है। इसमें माने हुए नैतिक और आत्मिक गुणों पर चलने अथवा उनकी

उपेक्षा कर देने का निर्णय करना पड़ता है। इस प्रकार के मामलों में वह पता झट चल जाता है कि क्या करना चाहिए। अन्तरात्मा की वाणी स्पष्ट होती है, उसका पालन करने के लिए भले ही असाधारण नैतिक दृढ़ता की आवश्यकता क्यों न हो।

द्वितीय प्रकार का निर्णय अधिक कठिन होता है। जब माने हुए गुणों में संघर्ष हो जाय तब हम परेशान हो जाते हैं। जब जीवन की कठिन परिस्थितियों के कारण चुनाव दो अनुचित विकल्पों में रह जाय तब हम क्या करें? उदाहरणार्थ, जहां मनुष्य-मात्र की समानता और योग्यता के आदर के गुणों में विरोध हो वहां हम क्या करें? या जब भ्रातृ-भाव और परस्पर सहमति में विरोध हो तब क्या किया जाय? इन परिस्थितियों में कभी कभी सोचविचार और सूझ-बूझ से ऐसा मार्ग निकल आता है जिससे दोनों विरोधी गुणों की रक्षा हो जाती है। परन्तु जब दोनों में मेल न हो सके तब मार्ग का निर्णय सम्भावित परिणामों को देखकर करना पड़ता है — वे परिणाम स्थायी होंगे या अस्थायी और उनका प्रभाव बहुतों पर पड़ेगा या थोड़ों पर। इस प्रकार नैतिक गणना करके देखने से ऐसा मार्ग निकल आता है जो सब बातों का विचार करते हुए सदाचार-संगत होता है।

उक्त गुणों से युक्त व्यवहार को सभी पसन्द करते हैं

इस अध्याय में पहले जिन गुणों का वर्णन किया गया है उन्हें केवल मानना ही नहीं, क्रियान्वित भी करना चाहिए। जो कोई इन गुणों पर अपने जीवन में आचरण करने लगता है उसे सब अनुकरणीय और प्रशंसनीय मानने लगते हैं। जो कोई इन मौलिक गुणों को मान लेगा वह दूसरों का भी ख्याल रखने लगेगा। वह मिथ्याभिमानी नहीं रहेगा। वह समाज की संस्थाओं और परम्पराओं का आदर करने लगेगा, क्योंकि उनसे किसी सीमा तक मनुष्यों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। वह सामूहिक समस्याओं को हल करने के लिए सहयोग के उपायों का प्रयोग करने लगेगा। वह बल के प्रयोग को कानून से मर्यादित, न्याय से अनुमोदित और दया से विनमित रखना पसन्द करेगा। व्यक्ति अथवा नागरिक की हैसियत में उसके सामने जो प्रश्न

निर्णय के लिए उपस्थित किये जायेंगे उनके विषय में वह सदा सत्य को जानने का यत्न करेगा। वह बौद्धिक स्वतन्त्रता का अपना जन्मसिद्ध अधिकार छोड़ेगा नहीं, वरन् उसकी रक्षा करेगा। उसके मन और वचन में एकता रहेगी। दूसरों की योग्यता बढ़ती देखकर वह प्रसन्न होगा, ईर्ष्या नहीं करेगा। किसी से खास रियायत किये जाने अथवा किसी को अवसर न दिये जाने का वह विरोध करेगा। वह न अपने लिए कोई रियायत चाहेगा और न दूसरों को अवसर से वंचित करने का यत्न करेगा।

जो व्यक्ति इन गुणों का मान करने लगता है उसका चरित्र वैयक्तिक सत्याचरण के लौह सूत्र में गुंथ जाता है। छल और कपट के उपायों से उसे विरक्ति हो जाती है और उन्हें वह दूसरों के लिए प्रतारणा तथा अपने लिए पतन का कारण मानने लगता है। ऐसे मनुष्य पर भरोसा किया जा सकता है कि वह सदा सत्य बोलेगा, अपने समाज में बुरे प्रभावों का प्रबल विरोध करेगा, अपने वचन पर दृढ़ रहेगा, कानून का पालन करेगा, और अपने आचरण में उन नियमों का ध्यान रखेगा जो कि इन गुणों को मान्यकर लेने से सब पर समान रूप से लागू हो जाते हैं। समाज के लाभ का प्रत्येक काम वह तत्परता और निःस्वार्थ भाव से, अपना स्पष्ट और अनिवार्य नागरिक कर्तव्य मान कर, करेगा।

अमेरिकी जनतन्त्र, किसी एक धर्म को उन गुणों के एकमात्र आधार के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता जिन्हें कि सब अमेरिकी मानते हैं। तो भी, केवल कुछ अपवादों को छोडकर, सब विचारवान् अमेरिकी इन नैतिक और आत्मिक गुणों में निष्ठा रखते हैं। इसमें आश्चर्य की बात कुछ नहीं है, क्योंकि हममें से प्रत्येक अपने जन्म से ही गुणों के एक ऐसे आदृश्य सूत्र में बंधा रहा है जिस से उसके जीवन का मार्ग-दर्शन होता रहा है। धार्मिक मामलों में तीव्र मतभेद रखते हुए भी नैतिक और आत्मिक गुणों में हमारा ऐकमत्य हो सकता है। और इस कारण किसी विशिष्ट परिस्थिति में हमारा यह निर्णय साधारणतया सर्वसम्मत हो सकता है कि अच्छा आचरण कोन-सा है। यह तथ्य कुछ कम महत्व का नहीं है कि इस संबंध में धार्मिक मतभेद रखते हुए भी कि इन गुणों के आधार क्या हैं, हम किसी व्यवहार के भला या बुरा होने का निर्णय इन सर्वसम्मत गुणों से करने को सहमत हो जाते हैं। यह हमारी भारी सफलता भी है। हमारे अपने आचरण में चाहे जो त्रुटियां

हों, इसमें सन्देह नहीं कि प्रायः सब अमेरिकी ईमानदारी, सत्यपरायणता, सरलता, दया, सहयोग-वृत्ति और विश्वसनीयता आदि गुणों को पसन्द, और इनके विरोधी अवगुणों को नापसन्द करते हैं। चरित्र की कुछ विशेषताओं के पसन्द और अन्यों के नापसन्द किये जाने का कारण यह है कि अमेरिकी जीवन में एक ऐसी गुणावली का विकास हो चुका है जिसे कुछ अपवादों को छोड़कर सभी लोग मानव-व्यवहार को ठीक ठीक परख सकने की कसौटी मानते हैं।

इन गुणों पर बार बार बल देने के लाभ अनेक हैं। इन गुणों के कारण जीवन की प्रणाली परिष्कृत हो जाती और उसके लक्ष्य, भौतिकता अपितु मानवता के स्तर से भी बहुत ऊंचे उठ जाते हैं। इन गुणों को स्वीकार हम चाहे युक्ति और तर्क के बल पर करें, परन्तु इनकी प्रेरक शक्ति बहुत कुछ उन आत्मिक और मानसिक निष्ठाओं से उत्पन्न होती है जो इनके कारण मनुष्य के हृदय में जम जाती हैं।

तृतीय अध्याय

मान्यता के कारण

तृतीय अध्याय

मान्यता के कारण

पिछले अध्याय में जिन नैतिक और आत्मिक गुणों की चर्चा हुई है उनका मान यद्यपि प्रायः सभी अमेरिकी करते हैं, परन्तु उनकी मान्यता के कारणों के विषय में भारी मतभेद हैं।

अनेक अमेरिकी इन गुणों की मान्यता का कारण अपने धार्मिक विश्वासों को मानते हैं। उनकी संख्या बहुत बड़ी है। परन्तु उन में भी भारी और गहरे मतभेद हैं। सभी धार्मिक मत बलपूर्वक कहते हैं कि नैतिक और आत्मिक गुणों की मान्यता का अन्तिम आधार धर्म है; प्रत्येक मत दावा करता है कि उसके मन्तव्य और व्यवहार ही सदाचार के सर्वोत्तम आधार हैं; कई मत अपने अतिरिक्त अन्य किसी मत को सत्य नहीं मानते।

अन्य अनेक अमेरिकी इन गुणों की मान्यता का कारण ऐतिहासिक परिस्थितियों को बतलाते हैं। उनका विचार है कि गुणों को मान्य या अमान्य यह देख कर किया जाता है कि, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में सुधार के द्वारा, वे सुख की वृद्धि करने में कितने सफल हुए।

अन्य बहुत से लोगों की इन गुणों की मान्यता के कारणों के विषय में कोई स्पष्ट कल्पना नहीं है। वे जैसा देखते हैं वैसा ही मान जाते हैं, और सामाजिक दबाव से उन पर चुपचाप अमल करने लगते हैं।

इन विविध मतों को देखते हुए प्रश्न हो सकता है कि मान्यता के कारणों का कोई वास्तविक महत्व है भी या नहीं। जब कुछ गुणों को आचार का निर्देशक मान लिया गया और जब यह भी प्रायः सर्वसम्मत निर्णय हो गया कि इष्ट आचार क्या है, तब इस प्रश्न का व्यावहारिक महत्व ही क्या रह गया कि उन गुणों को मान्य क्यों किया गया ? इस विवाद का मूल्य ही क्या है कि विविध लोग गुणों की मान्यता के विविध कारण बतलाते हैं और बहुत से लोग कुछ भी कारण नहीं बतलाते ? तो क्या हम यह समझ लें कि मान्यता के कारणों का प्रश्न महत्वहीन और अप्रासंगिक है ?

स्कूल की एक घटना से विविध कारणों की व्याख्या हो सकती है

मान्यता के कारणों का स्वतन्त्र रूप म कोई महत्व है या नहीं, यह एक काल्पनिक प्रश्न है। हमें यहां उसके विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यह स्पष्ट है कि शिक्षण की नीति और कार्यक्रम की दृष्टि से इन कारणों का प्राथमिक महत्व है।

बालकों और युवकों का स्वभाव बात बात में "क्यों ?" पूछने का होता है। कभी कभी तो वे यह प्रश्न कर करके दूसरों को परेशान कर देते हैं। जो लोग उन्हें कहते हैं कि एक प्रकार के आचरण से दूसरे प्रकार के आचरण के अधिक अच्छा होने का कोई विशेष कारण नहीं अथवा इस का कारण कुछ भी समझ लो, उनकी बात पर वे (बालक) जल्दी से विश्वास या अमल नहीं करते। " 'क्यों' की परवाह मत करो" का सिद्धान्त शिक्षण-शास्त्र में कितना ही सफल क्यों न माना गया हो, वह तानाशाही राज्यों या स्कूलों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं चल सकता। शिक्षा-शास्त्र और आदर्श, दोनों, की दृष्टि से स्कूल मान्यता के कारणों की उपेक्षा नहीं कर सकते।

परन्तु इन कारणों के विषय में लोगों का तीव्र मतभेद है, और कुछ कारणों को समझाये बिना शिक्षण सफल हो ही नहीं सकता। इसलिए प्रश्न होता है कि स्कूल करें तो क्या करें। आइये, हम एक घटना के सहारे कुछ सम्भावनाओं पर विचार करें। यह घटना है तो कल्पित, परन्तु शिक्षकों और विद्यार्थियों को स्कूलों में प्रतिदिन बार बार जो फैसले करने पड़ते हैं उनका यह एक नमूना है।

जॉनी को प्रति सप्ताह एक डाइम (डाइम=१० सेण्ट) जेब खर्च के लिए मिलता है। उसने अपनी जेब से चमकता हुआ डाइम निकाला और वह टाफी वाले की दुकान पर खड़ा होकर सोचने लगा कि मैं एक एक सेण्ट की दस पेपरमिन्ट की टिक्कियें लूं या छः सेण्ट का एक चोकोलेट। उसने चोकोलेट लेने का फैसला किया। उसने डाइम दुकानदार के सामने फेंककर चोकोलेट मांगा। दुकानदार ने उसे उठाकर अपने नकदी के गल्ले में डाल लिया और जॉनी को चार सेण्ट लौटा दिये। वह जल्दी से सेण्ट के सिक्के और चोकोलेट अपने बस्ते में डालकर स्कूल की तरफ भागा।

स्कूल में अपनी जैकट लटका कर, उसने रेज़गारी निकाली और गिनने लगा — एक पेनी, दो पेनी, तीन पेनी, चार......, नहीं, यह पेनी नहीं ! यह तो डाइम है ! परन्तु उतना चमकदार नहीं जितना मैंने टाफी की दूकान पर दिया था। यह मैला और घिसा हुआ है। इसलिए यह जल्दी में देखने पर पुरानी पेनी जैसा लगा। जॉनी को अकस्मात् इतना धन पाकर परम प्रसन्नता हुई। खुशी के मारे वह भागा हुआ अपनी अध्यापिका के पास गया। वे कक्षा में बैठी गणित की कापियां ठीक कर रही थीं। "देखिये," वह बोला "दुकान वाले ने मुझे पेनी के स्थान पर डाइम दे दिया ! अब इस सप्ताह मैं दो चोकोलेट और एक टिक्की पेपरमिण्ट की खरीद सकूंगा। वाह ! खूब मजा रहेगा।"

मिस विलियम्स[1] ने अपनी पेन्सिल डेस्क पर रख दी और बोली, "जॉनी, तुमने हिसाब तो ठीक लगाया। परन्तु क्या यह अच्छा नहीं होगा कि तुम दुकानदार का डाइम उसे वापस करके बदले में उससे पेनी ले लो ?"

जॉनी के चेहरे की चमक जाती रही और वह मुरझा गया। "पर, मिस विलियम्स ! उसने यह मुझे स्वयं दिया है। मैं इसे अपने पास क्यों न रखूं ?"

कारण सं० १ **न्याय**

मिस विलियम्स : क्योंकि यह डाइम तुम्हारा नहीं है। न तो तुमने इसे कमाया और न इसे तुम्हें तुम्हारे पिता जी ने दिया।

जॉनी : यह तो ठीक है, परन्तु इसे दुकान वाले ने मुझे दिया है।

मिस विलियम्स : वह इसे पेनी के भ्रम में दे गया।

जॉनी : परन्तु इससे क्या हुआ ?

मिस विलियम्स : जब वह दिन भर की बिक्री गिनेगा तो उसे नौ सेण्ट की कमी पड़ेगी। दुकान का मालिक यह रकम अपने नौकर से रखवा लेगा। शायद नौकर का भी कोई छोटा बालक हो। तुम क्या यह चाहते हो कि उस बालक को टाफी न मिले ?

---

१. अध्यापिकाओं के ये नाम अमेरिका में अतिप्रचलित कुछ नामों में से छांट लिये गये हैं।

जॉनी : उसके पिता को होशियारी से काम करना चाहिये था।

मिस विलियम्स : ठीक है। परन्तु यदि सब रोजगार इसी तरह चलने लगे कि तुम्हें जो मिल जाय सो तुम रख लो, वह तुम्हारा हो या नहीं, तो हमारा देश भारी संकट में पड़ जायगा।

जॉनी: पर दो चोकोलेटों से सारे देश में क्या फर्क पड़ेगा ?

मिस विलियम्स : बात केवल दो चोकोलेटों की नहीं है। दुकान वाले की भूल से लाभ उठाना तुम्हें उचित नहीं। उचित व्यवहार के सिद्धान्त का महत्व हम सभी के लिए एक-सा है।

कारण सं० २ कानून

(इस बार उसी उलझन को मिस ब्राउन ने सुलझाया)

मिस ब्राउन : यदि डाइम तुम्हारे ही पास रह गया तो इस का मतलब यह आगया जायगा कि तुमने इसे चुराया था। चोरी करने वालों को कानून दण्ड देता है।

जॉनी : परन्तु दुकान वाले को यह पता ही कैसे लगेगा कि डाइम किसे दिया गया ?

मिस ब्राउन : दुकान वाले को चाहे पता न लगे, मुझे तो पता है। तुमने ही मुझे बतलाया है।

जॉनी : तो क्या तुम किसी पुलिस वाले से कह दोगी ?

मिस ब्राउन : नहीं, मैं पुलिस वाले से नहीं कहूंगी। परन्तु मैं तुम्हीं को डाइम लौटा देने के लिए कहती हूं। तुम को डाइम रख लेने के कारण जेल नहीं भेजा जायगा, क्योंकि तुम बालक हो, और यह रकम कुछ भी नहीं। परन्तु तुम बड़े होते और रकम भी बड़ी होती तो शायद तुमको जेल हो जाती।

जॉनी : परन्तु यदि इस सप्ताह में दो चोकोलेट अधिक खरीद लूं तो इस का यह मतलब थोड़े ही है कि मैं किसी को लूटना चाहता हूं ?

मिस ब्राउन : यह मतलब तो जरूर नहीं है। परन्तु तुम यदि अभी से कानून का पालन करना नहीं सीखोगे तो क्या तुम बड़ी रकम मिलने पर अपने लालच को रोक सकोगे ? हमने चोरी न करने का कानून बनाया हुआ

है । यदि हम उसका पालन नहीं करेंगे तो समाज हम को दण्ड देगा। देखो, तुम दो चोकोलेट का लालच कर रहे हो । कर रहे हो ना ?

जॉनी : परन्तु मुझे चोकोलेट अच्छी लगती है ।

मिस ब्राउन : बड़े होने पर शायद तुमको चोकोलेट इतनी अच्छी न लगे कि तुम उसके लिए जेल जाने को तैयार हो जाओ । परन्तु शायद तुमको और चीजें बहुत अच्छी लगने लगें । यदि तुम अभी से कानून का पालन करना न सीखे तो बाद को वैसा करना बहुत मुश्किल हो जायगा ।

कारण सं० ३ — सम्पत्ति का अधिकार

(इस बार उलझन को मिसेज़ स्मिथ ने सुलझाया)

मिसेज़ स्मिथ : तो जो वस्तु तुम्हारी नहीं है तुम उसे अपने पास रखना चाहते हो ?

जॉनी : नहीं, यह मेरी ही है । उसने यह मुझे ही दी थी ।

मिसेज़ स्मिथ : परन्तु उसने देखा नहीं कि यह डाइम है ।

जॉनी : तो यह उसका कसूर है ।

मिसेज़ स्मिथ : अच्छा समझ लो कि उसकी जगह तुम बैठे होते और तुम ने भूल से किसी को डाइम दे दिया होता तो क्या तुम यह आशा न करते कि वह डाइम तुम्हें वापिस मिल जाय ?

जॉनी : हां, शायद करता । परन्तु दुकानदार का आदमी मुझ से तो जरूर ज्यादा मालदार होगा । वह इस छोटे से सिक्के की क्या परवाह करता होगा । परन्तु मैंने एक सप्ताह में तीन चोकोलेट खाकर कभी नहीं देखी ।

मिसेज स्मिथ : देखो, तुम यह तो मानते ही हो कि पराये की बड़ी रकम अपने पास रखना ठीक नहीं । परन्तु बात रकम की नहीं, उसूल की है । परायेकी चीज लेना अच्छा नहीं है । इतनी सी बात याद रखो और तुम ठीक रहोगे ।

कारण सं० ४ **सत्याचरण**

(इस बार उलझन मिस जानसन ने सुलझाई)

मिस जानसन : तुम्हें इसे वापस कर देना चाहिए, क्योंकि तुम को बार बार इस बात का याद आना अच्छा नहीं लगेगा कि तुम ने परायी चीज़ अपने पास रख ली थी।

जॉनी : परन्तु डाइम उसने मुझे स्वयं ही दिया था। मैं उसकी चिन्ता क्यों करूं ?

मिस जानसन : तुम जानते हो कि उसने तुमको डाइम भूल से दे दिया, असल में यह तुम्हारा नहीं है।

जॉनी : पर जब इस बात का किसी को पता ही नहीं तो मैं ही इसकी परवाह क्यों करूं ?

मिस जानसन : परन्तु तुम्हें तो पता है। तुम अपनी इज्जत आप कैसे कर सकोगे जब कि तुम जानते हो कि तुमने एक खराब काम किया है ? यदि तुम किसी और के बारे में जानते होते कि उसने खराब काम किया है तो क्या तुम उसकी इज्जत करते ? यदि तुम दुकान वाले को भूल से डाइम दे देते और वह उसे रख लेता तो क्या तुम उसकी इज्जत करते ?

जॉनी : शायद नहीं। हां, मैं नहीं करता, यदि वह मेरा डाइम ले लेता।

मिस जानसन : परन्तु तुम्हें उस दुकानदार की बुराई का ध्यान तभी आता जब तुम यह बुराई देखते। यहां तो बुराई तुमने स्वयं की है। तुम भाग कर अपने से दूर नहीं जा सकते। तुम्हें प्रति क्षण अपनी बुराई याद आती रहेगी। दो चोकोलेट के पीछे अपने आप को दोषी समझते रहना ठीक नहीं।

कारण सं० ५ **साथियों की पसन्द**

(इस बार उलझन को मिसेज मिलर ने सुलझाया)

मिसेज मिलर : तुमने डाइम न लौटाया तो बतलाओ लोग क्या कहेंगे ? तुम्हें क्या यह अच्छा लगेगा कि तुम्हारे मित्र तुम्हें चोर समझें ?

जॉनी : मैं उन्हें बतला दूंगा कि डाइम मुझे दुकान वाले ने दिया था ।

मिसेज मिलर : परन्तु वे तुम्हारा विश्वास नहीं करेंगे । यदि तुम्हारा कोई मित्र तुमको भूल से डाइम दे देता तो क्या तुम उसे रख लेते ?

जॉनी : मैं कह नहीं सकता ।

मिसेज मिलर : अब यदि तुमने यह डाइम रख लिया तो तुम्हारे साथी सोचेंगे कि यह हमारे साथ भी ऐसा ही करेगा । वे तुमको विश्वसनीय साथी नहीं मानेंगे । दो चोकोलेट के पीछे अपना विश्वास खो देना ठीक नहीं ।

कारण सं० ६ **सत्ता**

(इस बार उलझन को मिस जोन्स ने सुलझाया)

मिस जोन्स : तुम इसे वापिस कर दो, क्योंकि इसे रखना ठीक नहीं ।

जॉनी : परन्तु यह मुझे दुकान वाले ने ही दिया है ।

मिस जोन्स : भूल से, उसका इरादा तुमको डाइम देने का नहीं था । हमें नियमों के विरुद्ध नहीं चलना चाहिए । देखो, मैं तुमसे कह रही हूं कि यह डाइम तुम्हें नहीं रखना चाहिए ।

जॉनी: क्यों ?

मिस जोन्स : कारण इसके अनेक हैं । परन्तु ऐसा करने को बुरा सभी मानते हैं । तुम्हें भलाई बुराई का अन्तर समझना चाहिए । तुम्हारी अध्यापिका के नाते तुम्हें यह सिखाना मेरा कर्तव्य है ।

जॉनी : मैंने एक सप्ताह में तीन चोकोलेट कभी नहीं खायीं । इस बार मुझे यह मौका मिला है । इसमें बुराई क्या है ?

मिस जोन्स : देखो जॉनी, यदि तुमने यह डाइम तुरन्त ही वापस न किया तो तुमको स्कूल के बाद रुकना पड़ेगा । समझे ? बस, इसलिए तुम्हें डाइम लौटा देना चाहिये । ज्यादा बहस की जरूरत नहीं ।

कारण सं० ७ **मार्ग-निर्देश**

(इस बार उलझन को मिस राइट ने सुलझाया)

मिस राइट : इस डाइम का तुम क्या करोगे ?

जॉनी : चोकोलेट खरीदूंगा ।

मिस राइट : परन्तु तुमने दुकानदार के नौकर की भी सोची ?

जॉनी : वह तो मूर्ख है । डाइम और पेनी के अन्तर को भी नहीं समझता ।

मिस राइट : जब तुमने इसे लिया तब क्या तुम्हें पता था कि यह डाइम है ?

जॉनी : ऊपर आने से पहले तक मैं यही समझता रहा कि मेरे पास चार सेण्ट हैं ।

मिस राइट : तो तुम भी देखते ही डाइम और सेण्ट का अन्तर नहीं जान सके ?

जॉनी: मैं ध्यान से देखता तो जान जाता ।

मिस राइट : तो क्या दुकानदार के नौकर ने ध्यान से देखा था ?

जॉनी : भूल तो सभी से हो सकती है ।

मिस राइट : यदि यह भूल तुम से हो जाती तो तुम्हें कैसा लगता ?

जॉनी : मुझे पछतावा होता ।

मिस राइट : तुम्हें पता है कि कैशबुक (रोजनामचे) में हरेक बिक्री का हिसाब लिखा जाता है और शाम को दुकानदार बही का हिसाब गल्ले की रकम से मिलाता है ? जब वह शाम को अपनी रकम गिनेगा तब क्या होगा ?

जॉनी : कैशबुक से गल्ले में दस सेण्ट कम निकलेंगे । और क्या होगा ?

मिस राइट : नहीं, फर्क एक डाइम और एक पैनी का अर्थात् नौ सेण्ट का निकलेगा । नौकर दुकानदार को इसका कारण क्या बतलायगा ?

जॉनी : वह कह देगा कि मुझसे भूल हो गयी । और क्या ?

मिस राइट : यदि तुम दुकान के मालिक होते तो तुम क्या करते ?

जॉनी : मैं नौकर से नौ सेण्ट रखवा लेता ।

मिस राइट: और जो तुम नौकर होते ? तो क्या तुम नौ सेण्ट दे देते ?

जॉनी: नहीं । परन्तु यदि भूल मुझ से होती तो रकम मुझ से वसूल की जानी चाहिए थी ।

मिस राइट : और जो रकम नौ सेण्ट की जगह नौ डालर होती तो भी क्या वैसा ही होना चाहिए था ?

जॉनी: शायद नहीं । नौ डालर देना तो बहुत मुश्किल होता ।

मिस राइट : और जो नौकर तुम्हें एक डालर की जगह दस डालर दे देता तो तुम क्या करते ?

जॉनी : ओह ! मैं उसे झट वापस कर देता, मैं उसका नौ डालर का नुकसान कभी न होने देता।

मिस राइट : परन्तु शायद उसका नौ सेण्ट का नुक़सान करने में कोई हर्ज नहीं ? क्यों ?

जॉनी : यह रकम तो छोटी सी है !

मिस राइट : तुम्हारी राय में रकम कितनी बड़ी हो जो वापिस कर दी जानी चाहिए ?

जॉनी : पता नहीं। मैंने इस तरह सोचा ही नहीं। तो क्या आपकी राय है कि मैं उसका डाइम उसे वापिस कर दूं ?

मिस राइट : तुम्हारी क्या राय है जॉनी ?

उदाहरण के अनेक मनोरंजक पहलू

इस छोटे से उदाहरण में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम यह कि यद्यपि सब अध्यापिकाओं ने इस उलझन को अलग-अलग प्रकार सुलझाया परन्तु सब की रुचि इस समस्या में गहरी और वास्तविक थी। किसी ने भी उसे तुच्छ नहीं समझा। किसी ने भी यह नहीं कहा कि यह मेरा काम नहीं। किसी ने भी यह दावा पेश करके बचने का यत्न नहीं किया कि अध्यापिकाओं का काम केवल पढ़ना-लिखना और गिनती सिखाना है। प्रत्येक अध्यापिका ने स्पष्ट अनुभव किया कि कक्षा और नियत पाठ्यक्रम से बाहर भी बालक के व्यवहार के प्रति अंशतः उसका उत्तरदायित्व होता है।

द्वितीय यह, कि बालक अब तक जिस समस्या से सर्वथा अपरिचित था उसे सब अध्यापिकाओं ने उसे बतलाने का यत्न किया। क्या करना चाहिये, इस प्रश्न पर उन सबका मत एक था। यद्यपि उन्होंने अपने मत का समर्थन विभिन्न प्रकार से किया परन्तु प्रत्येक अध्यापिका की दृष्टि उस नैतिक समस्या पर थी जो बालक के सामने आ उपस्थित हुई थी।

तृतीय यह, कि स्कूल के नित्य के जीवन में समस्याएं सदा ऐसे सरल रूप में उपस्थित नहीं होतीं जैसा कि इस उदाहरण में दिखलाया गया है। इस समस्या का संबंध केवल एक बालक से था। अनेक समस्याओं में अनेक बालक उलझे रहते हैं। उन्हें सुलझाने के लिए बहुधा सम्मिलित चर्चा, सम्मिलित निर्णय और सम्मिलित कार्यवाही की आवश्यकता पड़ती है।

चतुर्थ यह, कि ऊपर जो समस्या पेश की गयी है वह आर्थिक मूल्य की दृष्टि से बहुत छोटी है। परन्तु जैसा कि कई अध्यापिकाओं ने बतलाया, वैयक्तिक ईमानदारी छोटा गुण नहीं है। ईमानदारी की बार-बार उपेक्षा करने से ऐसी आदतें पड़ सकती और प्रवृत्तियां बन सकती हैं, जिनका परिणाम गम्भीर और स्थायी हो। परन्तु तो भी बालक के फैसले की तात्कालिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम सीमित ही था। स्कूल में कभी-कभी बालकों के व्यवहार से ऐसी गम्भीर समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति और समाज पर बहुत गहरा पड़ता है। जानबूझ कर झूठ बोलना, धर्म या जाति के कारण दूसरों को तंग करना, आदतन ठगना, अपने से निर्बलों को डराना-धमकाना, जब अपने अपराध के लिए गलती से दूसरों को दंड दिया जाय तब चुप बैठे रहना, इत्यादि उन समस्याओं के कुछ उदाहरण मात्र हैं जो कि स्कूलों में उत्पन्न हो सकती हैं। निःसंदेह, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि नैतिक और आत्मिक गुणों के उच्च शिक्षण का परिणाम अवश्य बुरे चाल-चलन के सुधार के ही रूप में प्रकट होगा। ईमानदारी, साहस और उदारता के कामों की प्रशंसा और उनको मान्यता देने की सम्भावनायें और भी अधिक अच्छी होती हैं।

पंचम यह, कि ऊपर के उदाहरणों में धार्मिक मतों और सिद्धान्तों के बलशाली प्रभाव को सम्मिलित नहीं किया गया। उनका शायद सरकारी स्कूलों की कक्षा में प्रत्यक्ष प्रयोग किया भी नहीं जा सकता, परन्तु निःसन्देह घर और धर्म-स्थान नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के लिए प्रभावशाली साधन सिद्ध हो सकते हैं।

षष्ठ यह, कि विद्यार्थियों पर अध्यापक की अपेक्षा अपने साथियों का प्रभाव अधिक शीघ्र, प्रबल और स्थायी होता है। किसी विद्यार्थी के अच्छे या बुरे कामों की चर्चा सब विद्यार्थियों में अपवाद रूप से ही होनी चाहिए, परन्तु विद्यार्थी स्वयं अपने मित्रों से सलाह ले सकता है, और उसे वैसा करने के लिए उत्साहित भी करना चाहिए।

अन्तिम यह, कि इस काल्पनिक उदाहरण में अध्यापिकाओं ने जिन विविध कारणों का सहारा लिया वे एक दूसरे से मिलते-जुलते थे। उदाहरणार्थ, यद्यपि एक अध्यापिका ने एकमात्र अपनी वैयक्तिक सत्ता का सहारा लिया था तथापि अध्यापकी का प्रभाव और अधिकार निश्चयपूर्वक सभी उपायों में विद्यमान था।

परिणाम की प्रभावशालिता का निश्चय करना कठिन है

किसी सरकारी स्कूल के अच्छे अध्यापक को इन में से किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। तो भी इतना स्पष्ट है कि अध्यापक को उसी उपाय का अवलम्बन करना चाहिए जो प्रभावशाली हो। परन्तु प्रभावशालिता की कसौटी क्या है? गिनती सदा सफलताओं की ही होती है। परन्तु कैसी सफलताओं की?

सफलता की एक आसान कसौटी यह हो सकती है कि बालक ने डाइम वापिस किया या नहीं, — चाहे स्वेच्छा से और चाहे दबाव से?

एक और अधिक कठिन कसौटी यह है कि उसने सिक्का वापिस करते हुए यह भली भांति समझ लिया या नहीं कि उसे वैसा ही करना चाहिए था।

सफलता की तीसरी कसौटी सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, और उसका प्रयोग सबसे अधिक कठिन भी है। इस कसौटी में केवल यह नहीं देखा जायगा कि बालक ने सिक्का वापिस कर दिया या नहीं, और न केवल यह देखा जायगा कि उसने यह समझ लिया कि नहीं कि उसे वह वापिस क्यों कर देना चाहिए था, अपितु यह भी देखा जायगा कि वह इस अनुभव का उपयोग भविष्य में अन्य और अधिक उलझनभरी परिस्थितियों में भी कर सकेगा या नहीं। इस सफलता की ठीक परख भली भांति तो कई वर्ष बीतने के पश्चात् ही हो सकेगी।

कारणों के चुनाव में सावधानता की आवश्यकता

हम सफलता की परख चाहे जिस प्रकार करें, नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण में कारणों का चुनाव करते हुए कुछ सावधानताओं का रखा जाना आवश्यक है।

प्रथम बात यह कि जिन कारणों को बतलाया जाय उनसे परिवार में दिये गये नैतिक अथवा धार्मिक शिक्षण का उपहास या निन्दा नहीं होनी चाहिए। कोई भी अच्छा अध्यापक बालकों और उनके माता-पिताओं के धार्मिक विश्वासों को अनावश्यक अथवा अवैज्ञानिक कह कर उन की तुच्छता जतलाने का यत्न नहीं करेगा।

इसके अतिरिक्त, कारण बतलाते हुए बालक को अपनी बुद्धि के प्रयोग की यथासम्भव अधिक स्वतंत्रता देनी चाहिये। अन्य सब परिस्थितियों को समान मानकर, सदाचार सम्बन्धी किसी भी प्रश्न में बालक आत्मनिर्णय और अपनी विचार-शक्ति का जितना अधिक प्रयोग कर सके उतना ही अच्छा है। यह तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि बतलाये गये कारणों को बालक की अवस्था के अनुसार परिवर्तित कर लेना चाहिए।

और अन्त में साधारणतया बुद्धिमत्ता का तकाजा यह है कि विविध कारणों का प्रयोग इस प्रकार किया जाये कि अभीष्ट आचार का पालन विविध पोषक कारणों और प्रेरणाओं पर आधारित हो, केवल अधिकार पर या बालक को दिये गये मार्ग-निर्देश अथवा अन्य किसी एक सम्भावित कारण पर नहीं।

चतुर्थ अध्याय

कार्यक्रम

चतुर्थ अध्याय

कार्यक्रम

कुछ वस्तुओं का मूल्य, कालेज की प्रवेशिका परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हो जाने, या संगीत में निपुणता प्राप्त कर लेने, या किसी व्यवसाय विशेष में कुशल हो जाने से, कहीं अधिक होता है। सरकारी स्कूलों में नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के लिए यह परम आवश्यक है कि इन गुणों के शिक्षण को चरम महत्व का समझने पर बार-बार जोर दिया जाय, और यह भली भांति समझ लिया जाय कि इसका उत्तरदायित्व जहां स्कूलों और उनके अध्यापकों पर है वहां समाज की अन्य संस्थाओं और सदस्यों पर भी है।

सरकारी स्कूल नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण देने के अपने उत्तर-दायित्व से इन्कार कभी नहीं करते। वे पहले भी इन गुणों का शिक्षण देते रहे हैं। परन्तु आज की आवश्यकताएं और भी अधिक प्रयत्न करने से ही पूरी हो सकती हैं। इस शिक्षण पर और भी अधिक बल देने और उसकी उपयोगिता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि शिक्षण की सब संभव प्रणालियों का, और जिन कठिनाइयों को हल करना पड़ेगा उनका, विवेचन कर लिया जाय।

नैतिक और आत्मिक गुणों को स्कूल का लक्ष्य मान कर चलना चाहिए

जो स्कूल और शिक्षक अपने कार्य में नैतिक और आत्मिक गुणों पर अधिक बल देना चाहते हैं वे कभी-कभी कुछ कठिनाइयों की कल्पना करके परेशान हो जाते हैं। अन्य कुछ शिक्षक, सम्भव है, नैतिक शिक्षण को अत्यन्त सरल समझें और कहें कि कुछेक उत्साहवर्द्धक सूत्रों से ही सब काम हो सकता है;

उन्हें गोली की भांति निगल लेने के लिए दिया जा सकता है। "जब तक अच्छे न हो जाओ तब तक एक गोली प्रतिदिन खाते रहो।"

इसलिए जिन गुणों पर इस कार्यक्रम में बल देना अभीष्ट है उनका उल्लेख स्पष्ट और प्रभावशाली शब्दों में कर देना आवश्यक है।

इसलिए उचित होगा कि अमेरिकी समाज के नैतिक और आत्मिक गुणों के सम्बन्ध में सब शिक्षकों की सम्मिलित सम्मति जान ली जाय। इस प्रकार सम्मति लेनें का एक लाभ यह होगा कि अपने शिष्यों को मार्ग का निर्देश करते हुए शिक्षक एक सम्मत दिशा में चल सकेंगे। इस पुस्तिका के द्वितीय अध्याय में जिन गुणों की परिगणना की गयी है उन्हें अभीष्ट दिशा का सूचक माना जा सकता है, परन्तु किसी भी सूची को बिना सोचे-समझे नहीं अपना लेना चाहिए। यह ध्यान विशेष रूप से आरम्भ से ही रखना चाहिए कि प्रत्येक समाज की आवश्यकताएं और समम्याएं क्या हैं और किस कार्य की समाज पर क्या प्रतिक्रिया होगी। ऐसी सूची के संग्रह, विश्लेषण और अंगीकरण के कार्य में सहयोग देने से भी शिक्षकों और माता-पिताओं को नैतिक और ग्रात्मिक गुणों पर विचार करने के ऐसे अवसर मिलेंगे जो उनमें से अनेकों के लिए सर्वथा नये होंगे तथा उनसे उनका उत्साह बढ़ेगा। और क्योंकि नये नये अनुभवों के आधार पर इन गुणों की व्याख्या बराबर करनी पड़ेगी इसलिए एक बार जिन गुणों को अंगीकार कर लिया गया है, उनकी भी समय समय पर पुनः परीक्षा करते रहना आवश्यक होगा।

इस प्रकार गुणों का निर्धारण करते हुए यह भी उचित होगा कि जहां कहीं सम्भव हो वहां इन विषयों में रुचि रखने वाले, जनता के प्रतिनिधियों को बुला कर उनका मत जान लिया जाय और उनकी सहमति प्राप्त कर ली जाय। शिक्षकों व माता-पिताओं के संगठनों, स्कूल और मुहल्ले की परिषदों, और विद्यार्थियों, युवकों तथा समाज की अन्य संस्थाओं को, इन विवादों में खुल कर भाग लेना चाहिए। स्कूल जिन गुणों का विकास करना चाहता हो उनकी सूचना माता-पिताओं, स्कूल बोर्ड के मेम्बरों, और रुचि रखनें वाले अन्य व्यक्तियों को देते रहना चाहिए। इन सज्जनों को बतलाते रहना चाहिए कि इस सम्बन्ध में वे स्कूल से क्या आशा रख सकते हैं और क्या नहीं। उन्हें स्कूलों की उचित सहायता के लिए , सहायक संगठन बनाने को भी प्रेरित करते रहना चाहिए।

शिक्षकों को स्वयमेव कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए

स्कूल का लक्ष्य निर्धारित करने में कुछ लोगों के विचार-विनिमय से सहायता भले ही मिल जाय, परन्तु उस तक पहुंचने के लिए आवश्यक कार्यक्रम का आधार प्रत्येक शिक्षक का कार्य ही बन सकता है। सहायकों के विचार और मंत्रणा सहायक हो सकते हैं, परन्तु परिणाम के लिए शिक्षकों की वैयक्तिक सूझ-बूझ, कुशलता और चतुरता पर ही निर्भर करना पड़ेगा।

इसलिए चतुर, कुशल, तत्पर और सूझ-बूझ वाले अध्यापकों को एकत्र करने और उन्हें कार्य की स्वतंत्रता देने का महत्व अत्यधिक है, और इस तथ्य को निःसंकोच स्वीकार करके ही आगे बढ़ना चाहिए। जब तक इसे स्वीकार नहीं किया जायगा तब तक, नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करने में वे कठिनाइयां जिनके कारण अनेक स्कूल असफल रह जाते हैं, सदा होती ही रहेंगी। शिक्षकों के स्वतंत्र काम में जिन कारणों से बाधा पड़ती है उनमें, धर्म से सम्बद्ध प्रश्नों की चर्चा करने में संकोच, उनके समय और शक्ति का विविध तथा कठिन कामों में व्यय, और अन्य अनेक विषयों की अपेक्षा किसी एक विषय का पूर्ण ज्ञाता होने की प्रवृत्ति भी सम्मिलित हैं।

सरकारी स्कूलों के बहुत से अध्यापक और प्रबन्धकर्त्ता धर्म संबंधी विवादों से डर और झिझक जाते हैं। इस कारण वे न केवल धर्म का शिक्षण नहीं देते, जैसा कि उनको करना भी चाहिए, प्रत्युत वे नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण भी कम से कम देकर बचकर चलने के प्रलोभन में फंस जाते हैं। इसलिए स्कूलों के प्रबन्धकर्त्ताओं, शिक्षकों, और समाज को स्कूल की जिम्मेदारियां भली भांति समझ लेनी चाहिएं, जिससे कि भय का वह वातावरण दूर हो जाय जो अपनी सूझ-बूझ का उपयोग नहीं होने देता।

इसके अतिरिक्त, समाज स्कूलों से अन्य भी कई प्रकार की आशाएं करता है। नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के साथ-साथ शिक्षकों से यह भी आशा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को नागरिकता के कर्त्तव्य सिखलायेंगे, घर और परिवार के जीवन के योग्य बना देंगे, स्वस्थ तथा बलवान् कर देंगे, हाईस्कूल और कालेज की पढ़ाई के योग्य बना देंगे, और उनमें व्यावसायिक योग्यता उत्पन्न करने में भी सफल सिद्ध होंगे। इनमें से कोई भी काम सरल

नहीं है। और इतने विविध कामों के सामने रहते हुए शिक्षकों को प्रबल प्रलोभन यह होता है कि वे अपना ध्यान और शक्ति केवल उन कामों पर केन्द्रित कर दें जिनका फल अधिकतम स्पष्ट और न्यूनतम विवादास्पद हो।

यह भी सम्भव है कि कुछ शिक्षक फ्रेंच भाषा की क्रियाएं सिखलाने, अथवा बाइनोमिअल थियोरिम को सिद्ध करने, अथवा इन्टर्नल कम्बश्चन इंजन की मरम्मत में इतने तल्लीन हो जायें कि उनका ध्यान अपने कार्य के नैतिक और आत्मिक परिणामों की ओर उचित मात्रा में जाय ही नहीं। अपने विशेष विषय के प्रति स्वाभाविक तथा विशेष आदर-भाव होने के कारण, सम्भव है कि वे अपनी पूरी शक्ति पाठ्यक्रम के विषयों को पूरा करने में ही लगा दें। परन्तु अध्ययन के विविध विषयों में निपुणता की प्राप्ति का नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास से कोई विरोध नहीं है। और यदि इन दोनों में कोई विरोध होता ही हो तो स्कूल को सन्देह और और संकोच छोड़कर, नैतिक और आत्मिक शिक्षण के अतिरिक्त अन्य सब लक्ष्यों को गौण कर देना चाहिए।

शिक्षकों को नैतिक और आत्मिक गुणों का अध्यापन भी सिखलाना चाहिए

नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के किसी भी कार्यक्रम की सफलता क्योंकि अन्ततोगत्वा शिक्षकों पर ही निर्भर करती है, इसलिए जिन संस्थाओं में शिक्षकों को अध्यापन का काम सिखलाया जाता हो उन्हें अपने पाठ्यक्रम में इन गुणों के शिक्षण पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। कोई शिक्षक अपने विषय का शिक्षण देने और सदाचार का विकास करने में कहां तक सफल या असफल रहेगा, इसका निर्णय बहुधा यह देखकर हो सकता है कि उसका निजी चरित्र अमेरिकी नवयुवकों को कितना आकृष्ट और प्रभावित कर सकेगा। इसलिए शिक्षकों की नियुक्ति करते हुए सदा ही चरित्र का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। शिक्षकों की शिक्षण-संस्थाओं को विद्यार्थियों का चुनाव करते हुए, शिक्षक-विद्यार्थियों की योग्यता जांचते हुए, और एजुकेशन बोर्ड से भावी शिक्षकों की सिफारिश करते हुए भी, उनकी छात्रवृत्ति और उनकी शिक्षण-कुशलता के अतिरिक्त, उनके चरित्र का विचार अवश्य कर लेना चाहिए।

स्कूलों के प्रवन्धकर्ताओं को शिक्षकों का चुनाव करते हुए तो चरित्र पर बल देना ही चाहिए, उन्हें शिक्षकों को भी इस बात के लिए प्रेरित करना चाहिए कि वे अपने विषय का अध्यापन करते हुए अपनी कल्पना और सूझ-बूझ का इस प्रकार उपयोग करें कि नैतिक और आत्मिक गुणों का भी विकास साथ साथ होता जाय।

इन गुणों के शिक्षण का सारी ही शिक्षण-पद्धति में संचार होना चाहिए

कभी कभी कहा जाता है कि नवयुवकों के नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण की आवश्यकताएं सदाचार के गुणों पर आधारित पाठशालाओं के द्वारा पूरी की जा सकती हैं। कभी कभी यह भी सुझाया जाता है कि ऐसे पाठों का दैनिक कार्यक्रम निश्चित कर देना चाहिए। एक अन्य सुझाव यह है कि इन पाठों को जूनियर या सीनियर हाईस्कूल के पाठ्यक्रम का एक पृथक् अंग बनाकर उस पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

इन सुझावों के आकर्षक लगने का कारण कुछ कुछ यह है कि ऊपर से ये तर्कसंगत जान पड़ते हैं। बालकों को अंकों का प्रयोग सिखलाने के लिए जिस प्रकार कक्षाओं में गणित पढ़ाने का समय निश्चित किया जाता है, इसी प्रकार जब बालकों को कुछ सर्वानुमत नैतिक और आत्मिक गुण सिखलाने हैं तब उनकी भी पृथक् कक्षा क्यों न रखी जाय? चरित्र-निर्माण के विशेष पाठ्यक्रम का सुझाव इसलिए भी आकर्षक लगता है कि उससे इस समस्या के सम्बन्ध में कुछ न कुछ करने का अवसर मिलता है। सरकारी स्कूलों के शिक्षकों और प्रबन्धकर्ताओं को सचमुच इन गुणों की चिन्ता होती है, परन्तु जिन्हें अन्याय पूर्वक इस आक्षेप का सामना करना पड़ता है कि स्कूल जानबूझ कर गुणों की परवाह नहीं करते, अपितु, इन्हें नष्ट किये डाल रहे हैं, वे इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ प्रत्यक्ष कार्यवाही करने की आवश्यकता अनुभव करने लगते हैं। और वे सोचते हैं कि जब एक बार स्कूल के कार्यक्रम में इस प्रकार की पाठ-विधि सम्मिलित कर दी जायगी तब वे अधिकृत पाठ-विधि के पृष्ठों और स्कूल के कार्यक्रम को अपनी सफाई में पेश करके उक्त आक्षेप का प्रतिवाद कर सकेंगे।

परन्तु गुणों का विकास, कई दृष्टियों से, कलाओं के सीखने अथवा क्रम-बद्ध ज्ञान की प्राप्ति से भिन्न वस्तु है। इस क्षेत्र में शिक्षण की मानसिक

आवश्यकताओं को अभी भली भांति समझा नहीं गया। कोई अन्तिम परिणाम निकालने से पूर्व और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है । तथापि कुछ परिणामों को निश्चित रूप से निर्णीत माना जा सकता है।

ज्ञान और व्यवहार : १९२८ में "कैरेक्टर एजुकेशन इन्क्वायरी" (**'चरित्र के शिक्षण का अनुसंधान'**) पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् यह अधिकाधिक मात्रा में प्रमाणित होता गया है कि उचित आचार का ज्ञान होने मात्र से, उचित आचार के पालन की सम्भावना बढ़ नहीं जाती । यद्यपि निरीक्षण से पता लगा है कि इस प्रकार के शिक्षण के कुछ लाभ होते हैं, परन्तु वे अचिरस्थायी और सीमित ही रहते हैं। अब तक "चरित्र" के नियमित पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जो परीक्षण किये गये हैं उनका परिणाम बहुत उत्साहवर्धक नहीं है। सम्भव है कि और अधिक नियमित परीक्षण करने से कुछ अधिक उपयोगी परिणाम प्रकट हों। यदि सरकारी स्कूल चरित्र का पृथक् पाठ्यक्रम चलायें तो उसे उनका एक परीक्षण ही समझना चाहिए, इस समस्या का अंगीकृत अथवा पर्याप्त हल नहीं। अपितु इस प्रकार के शिक्षण की कुछ अनिष्ट प्रतिक्रियायें होने का भय है। अपने गुण या दोषों का नियमित और निरन्तर चिन्तन करते रहने की उपयोगिता मानसिक स्वस्थता की दृष्टि से सन्दिग्ध ही है।

विशिष्ट अंग : लगभग एक-चौथाई शताब्दी पूर्व चरित्र के कुछ विशिष्ट अंगों पर आधारित शिक्षण बहुत लोकप्रिय हो गया था। उदाहरणार्थ, १९२५ में स्कूलों के एक संगठन में प्रातःकाल नौ से सवा नौ बजे तक प्रतिदिन प्रथम से अष्टम तक की कक्षाओं में चरित्र का पाठ पढ़ाया जाता था। पाठ में नियत विषय ये थे :

सोमवार :	नैतिक आचार
मंगलवार :	शिष्टाचार
बुधवार :	सम्पत्ति पर स्वामित्व के लिए आदर-बुद्धि
गुरुवार :	आत्म-रक्षा
शुक्रवार :	मितव्ययता और देशभक्ति

इनमें से प्रत्येक विषय को और भी भागों और उपविभागों में बांटा गया था। उस समय इस प्रकार की और भी योजनाएं प्रचलित थीं। उन में से कुछ अब भी जारी हैं। स्कूल के पाठ्यक्रम के एक पृथक् अंग के रूप में सदाचार का शिक्षण एक असन्दिग्ध आवश्यकता की पूर्ति का संदिग्ध साधन

है। चरित्र के पाठों को शिक्षण के कार्यक्रम के किसी कोने में कील या खूंटी की भांति ठोका नहीं जा सकता।

शिक्षण की प्रक्रिया की अखंडता : हाल की मनोवैज्ञानिक खोजों से चरित्र को एक पृथक् पाठ अथवा उसके विशिष्ट अंगों के रूप में सिखाने के विरोधी विचार की और भी अधिक पुष्टि हुई है। उन खोजों में व्यक्ति और शिक्षण को प्रक्रिया की अखंडता पर विशेष बल दिया गया है। गुणों का विकास व्यक्ति के समस्त अनुभवों द्वारा होता है। उनमें स्कूल के जीवन के अतिरिक्त, घर और समाज का जीवन भी सम्मिलित रहता है। व्यक्तित्व और चरित्र के विकास पर विविध प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का और व्यक्ति के रहन सहन की परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। चरित्र के विशिष्ट अंगों के शिक्षण का विचार इस बात से भी निर्बल पड़ जाता है कि सामूहिक शिक्षण का लक्ष्य, नवयुवकों में विशुद्ध वैयक्तिक आचार के अतिरिक्त सामाजिक आचार का विकास करना भी है। उस शिक्षण में दरिद्रता, अन्याय, और युद्ध सरीखी आर्थिक और सामाजिक समस्याओं की नैतिक और आत्मिक प्रतिक्रियाओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि गुणों के विकास के लिए व्यक्ति को स्वयं प्राप्त हुआ अथवा निर्देशों द्वारा प्राप्त कराया गया अनुभव मात्र पर्याप्त है। शिक्षण की प्रक्रिया में अनुभव के आधार पर निकाले हुए साधारण परिणामों का एक निश्चित स्थान है। निश्चित सिद्धान्तों का भी नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में एक भाग होता है, परन्तु ये परिणाम यथा सम्भव विद्यार्थी के अनुभव से ही निकाले जाने चाहिएं। न अकेले अनुभव से अभीष्ट फल निकल सकता है और न अकेले सिखाने-पढ़ाने से। विद्यार्थी ने जो कुछ सीखा है उसे अपने कार्यों, विवादों, और विचारपूर्ण निर्णयों के द्वारा प्रकाशन का अवसर देना चाहिए। ज्यों-ज्यों विद्यार्थियों की विचार-शक्ति विकसित होती जाती है त्यों-त्यों अपने अनुभवों से परिणाम निकालने की उनकी योग्यता भी बढ़ती जाती है। सब मिलाकर स्पष्ट चिन्तन कर सकने की योग्यता का सम्बन्ध निश्चित रूप से चरित्र में अभीष्ट अंगों के विकास और नैतिक गुणों का आदर करने के साथ है। इस प्रकार का समस्त जीवन, उसकी प्रत्येक कक्षा, बसका प्रत्येक शिक्षक और प्रत्येक कार्य, नैतिक गुणों को समझने और उनका समादर करने की योग्यता बढ़ाने में सहायक अथवा बाधक होता है।

नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण, एक विशेष पाठ की अपेक्षा, स्कूल के समस्त जीवन में उनका संचार करके अधिक अच्छी प्रकार दिया जा सकता है। इस प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं है कि हम उदासीनता अथवा अवसर की वशवर्तिता की नीति पर चलना चाहते हैं। शिक्षक पहले ही बहुधा यह शिकायत करते रहते हैं कि पाठ्यक्रम में विषय बहुत अधिक हैं, और इसलिए वे उनमें और विषयोंका बढ़ाया जाना पसन्द नहीं करते। उनका यह दृष्टिकोण अन्य मामलों में ठीक हो सकता है, परन्तु नैतिक और आत्मिक गुणों सरीखे आधारभूत विषय के सम्बन्ध में इसे ठीक नहीं माना जा सकता। हम सदाचार को अन्य विषयों के शिक्षण के साथ मिला देने का पक्ष इस कारण नहीं लेते कि हम उनके शिक्षण का मूल्य अथवा महत्व कुछ घटा देना चाहते हैं अथवा स्कूलों के वर्तमान पाठ्यक्रम का समर्थन करना चाहते हैं, अपितु केवल इसीलिए लेते हैं कि हम ऐसी प्रणालियों को पसन्द करते हैं जिनसे परिणाम अच्छे से अच्छा निकल सके। उपलब्ध प्रमाण और परिणाम बतलाते हैं कि नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में वही विधियां अधिक फलदायक सिद्ध होंगी जिनमें इन गुणों को स्कूल के समस्त जीवन के साथ मिला दिया और अन्य विषयों के पाठ्यक्रम का एक आवश्यक अंग बना दिया जायगा।

सम्भव है कि नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास का सर्वोत्कृष्ट मार्ग, शिक्षणीय विविध गुणों के अनुसार भिन्न भिन्न हो। परन्तु अमेरिकी समाज द्वारा आज अंगीकृत गुणों को प्रत्यक्ष पाठ के रूप में सिखाना ठीक नहीं जान पड़ता। यदि हमारे अंगीकृत गुणों में केवल आज्ञा-पालन और दब्बूपन को ऊंचा स्थान प्राप्त होता, तो उन्हें प्रत्यक्षतः पृथक् निर्दिष्ट विषय के रूप में सिखाना शायद अधिक उपयोगी होता। परन्तु इसके विपरीत, हमारे गुणों में, मिलकर और अकेले अकेले कार्य करने की शैलियों में एक विषम सन्तुलन को आदर्श माना गया है, और प्रत्येक अच्छे अमेरिकी नागरिक से उसे अपनाने की आशा की जाती है।

नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में स्कूल के सभी साधनों का उपयोग होना चाहिए

जब हम यह कहते हैं कि नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण प्रत्येक शिक्षक का काम है, तब हम यह चेतावनी भी साथ ही दे देते हैं कि उसका

अर्थ यह न लगाया जाय कि वह किसी भी शिक्षक का काम नहीं। यद्यपि इन गुणों के शिक्षण का पाठ्यक्रम में कोई स्पष्ट समय-विभाग नहीं बनाया जा सकता तो भी इनके शिक्षण को आकस्मिक परिस्थितियों अथवा जिस किसी की इच्छा पर भी नहीं छोड़ देना चाहिए।

अनुभव और उदाहरण : प्रश्न होता है कि यदि स्कूल में नैतिक गुणों का विकास एक पृथक् पाठ्यक्रम के सरल मार्ग द्वारा अथवा विशिष्ट अंगों के रूप में नहीं हो सकता तो फिर किस प्रकार होना चाहिए ? इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय यह जान पड़ता है कि यह कार्य अनुभव और उदाहरण के द्वारा किया जाय। जब किसी काम को कई प्रकार किया जा सकता हो, तब उनमें से नैतिकतापूर्ण मार्ग का चुनाव करके, एक उपाय को दूसरे के मुकाबले में रखकर और उनके सम्भावित परिणामों पर विचार और विवाद करके, और बाद को उन परिणामों की परीक्षा करके, विद्यार्थी यह अभ्यास कर सकता है कि अपनी एक इच्छा की उसकी विरोधी दूसरी इच्छा के साथ, अथवा अपनी इच्छाओं की दूसरों की इच्छाओं के साथ तुलना किस प्रकार की जाय। विद्यार्थी ऐसी परिस्थितियों में किस मार्ग को पसन्द करेगा, यह अन्य बातों की अपेक्षा इस बात पर निर्भर करता है कि स्कूल ने उसे उचित अनुभव कराने और स्कूल के शिक्षकों ने अपने शुद्ध आचरण द्वारा उसके सामने उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करने में कहां तक सफलता प्राप्त की है।

इसी प्रकार, स्कूल और उसके शिक्षकों की भावना नैतिक गुणों के विकास का आधारभूत साधन बन जाती है। जिस स्कूल में सब काम मनमाने अधिकारों के ज़ोर पर करवाये जाते हों, जिस स्कूल में प्रयत्न की प्रेरणा केवल पारस्परिक प्रतिस्पर्धा से मिलती हो, जिस स्कूल में पूरी ईमानदारी का बरताव न होता हो, जिस स्कूल में प्रत्येक व्यक्ति अपना ही स्वार्थ सिद्ध करने की चेष्टा में रहता हो, जिस स्कूल का वातावरण भय, सन्देह और असहिष्णुता से भरा हो, और जिस स्कूल में किसी भी बालक के व्यक्तित्व की उपेक्षा की जाती अथवा उसे दबा दिया जाता हो, वह नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में कुछ भी सहायक नहीं हो सकता। वही स्कूल सफलता की आशा कर सकता है जिसके सब कर्मचारी स्वयं नैतिक गुणों का विचार रखते और आदर करते हों, जिसका पाठ्यक्रम उदारता और मानवतापूर्ण और लचकीला हो, और जो प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का आदर करने के आदर्श से

अनुप्राणित हो। जो स्कूल नैतिक गुणों को अपने उदाहरण द्वारा सिखाते हैं वे उनका पाठ पढ़ाने वाले स्कूलों की अपेक्षा अच्छे हैं।

क्रम-बद्ध विषय: स्कूल का क्रम-बद्ध विषयों का शिक्षण भी नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में सहायक हो सकता है। उदाहरणार्थ, प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन करते हुए विद्यार्थी प्राकृतिक नियमों की परस्पर संगति, ऋतुओं के क्रमिक परिवर्तन, आकाश के विस्तार, पालन और पोषण के कार्य में जीव-जगत् की सहायता, और विचार तथा श्रद्धा के विषय आदि अन्य अनेक कार्य-कारणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

सामाजिक विज्ञान का सम्बन्ध तो निःसन्देह आदि से अन्त तक नैतिक और आत्मिक समस्याओं के साथ ही रहता है। जिस प्रकार डच लोगों ने बांध बनाकर और समुद्र को पीछे धकेल कर बेकार पड़े हुए स्थानों को समृद्ध खेतों और नगरों में परिणत कर दिया, उसी प्रकार मनुष्य ने समाज के आचार को सुधारने और उन्नत करने के लिए प्रबल प्रयत्न से नैतिक और आत्मिक गुणों की मर्यादा का निर्माण किया है। इन मर्यादाओं के आदर की शिक्षा देना भी समाज-विज्ञान के शिक्षण का एक मुख्य कार्य है।

इसी प्रकार, साहित्य और कला में क्योंकि मनुष्य के भावों, गुणों और परस्पर सम्बन्धों, उसके विश्वासों और अविश्वासों, उसकी पारस्परिक निष्ठा, आत्मत्याग और साहस के आदर्शों का विचार तथा विवरण रहता है, इसलिए इन विषयों के अध्ययन से नैतिक और आत्मिक गुणों के विवेचन का अति सुन्दर और उपयुक्त अवसर मिल जाता है।

तथ्य और निपुणता आधुनिक जीवन के आवश्यक उपकरण हैं। परन्तु शिक्षकों और शिक्षितों को केवल तथ्यों का ज्ञान और निपुणता प्राप्त कर लेने से आगे बढ़ कर, उनके अर्थों और सम्भावित परिणामों की विचारपूर्ण व्याख्या करना सीखना चाहिए। किसी तथ्य को केवल जान लेना उस पर विचार करने की अपेक्षा कहीं सुगम है। परन्तु गुणों के शिक्षण में 'सोचना और अमल करना' अत्यन्त आवश्यक प्रक्रियायें हैं।

शिक्षकों को चाहिए कि विद्यार्थी जो तथ्य जानें और निपुणता प्राप्त करें उन पर विचार और मनन करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करें। यदि शिक्षक के सब प्रश्नों का उत्तर केवल तथ्यों से मिल जायगा तो विद्यार्थी केवल तथ्यों को सब कुछ मानने लगेंगे। जिन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए समस्याओं को हल

करना पड़ें, कारण सोचने पड़े, परिणामों का विचार करना पड़े, तुलना करनी पड़े, अथवा अन्य निर्णय करने पड़ें, वे, तथ्य और निपुणता के व्यावहारिक उपयोग का शिक्षण देने में अधिक सहायक होते हैं। ऐसे विचारपूर्ण प्रश्न विद्यार्थी को यह समझने में सहायता देते हैं कि तथ्यों और निपुणता का प्रयोग क्यों, कैसे और कब करना होगा। विद्यार्थी जिन तथ्यों को सीख रहे हैं उन पर जब वे विचार और आचरण करने में सुख और सन्तोष का अनुभव करने के अभ्यासी हो जाते हैं, तब वे उन कक्षाओं को निरी ठग विद्या मानने लगते हैं जिनका आरम्भ और अन्त केवल तथ्य बतला कर हो जाता है।

उदाहरणार्थ "मैकबैथ" नाटक को समझने के लिए उसकी कहानी के तथ्य जानना आवश्यक है। परन्तु स्कूलों में यह नाटक पढ़ाने का एक प्रयोजन यह भी है कि विद्यार्थी समझ जायें कि असंयत अधिकारलिप्सा के दुष्परिणाम क्या हो सकते हैं। यदि शिक्षक के प्रश्नों में मुख्यतया "कौन, क्या, और कब?" पूछा गया हो और विद्यार्थी उनका ठीक ठीक उत्तर दे दें, तो नाटक की कहानी का ज्ञान स्वयमेव हो जायगा। परन्तु यदि शिक्षक उन प्रेरक शक्तियों का विवेचन करे जिन्होंने कि इस कहानी के तथ्यों को जन्म दिया, यदि वह विद्यार्थियों को केवल प्रसिद्ध प्रसिद्ध वाक्य रटवाने की अपेक्षा उन्हें उनकी व्याख्या समझने में सहायता दे, यदि विद्यार्थी उन परिणामों को ध्यान से देख लें जोकि मैकबैथ के अपनी इच्छाओं का वशवर्ती हो जाने के कारण उत्पन्न हुए, यदि उन्हें कविता का प्रखर सौन्दर्य और प्रभाव समझने में सहायता दी जाय, और यदि वे इसी प्रकार के मनन और चिन्तन के अभ्यासी हो जायें, तो इस नाटक का अध्यापन, साहित्य और सदाचार दोनों का पाठ बन जाता है।

जिस कक्षा में इन गुणों पर ध्यान दिया जायगा उसमें विद्यार्थियों के निजी विचारों का भी आदर किया जाने लगेगा। एक जूनियर हाईस्कूल के विद्यार्थी ने अपने शिक्षक के प्रश्न का उत्तर 'मैं समझता हूं' शब्दों से देना आरम्भ किया, और शिक्षक ने उसकी बात को तुरन्त ही यह कह कर काट दिया, 'मैं तुमसे यह नहीं पूछता कि तुम क्या समझते हो। मैं यह जानना चाहता हूं कि पुस्तक क्या समझती है।' इसके विपरीत एक दूसरी कक्षा में एक विद्यार्थी ने 'समझा' कि जो लोग अपना ऋण न चुकायें उन्हें जेल भेज देना अच्छा है। उसकी इस समझ का शिक्षक ने और उसके अन्य साथियों ने तीव्र विरोध किया। परन्तु उसकी बात को सबने सुना शिष्टतापूर्वक। इसके

पश्चात् जो विवाद हुआ उसम ज्यों ज्यों वह विद्यार्थी यह समझता गया कि ऋणी को जेल की सजा देना कितना व्यर्थ होता है, और उसका परिवार पर कितना बुरा असर पड़ता है, त्यों त्यों सामाजिक प्रश्नों को समझने की उसकी सामर्थ्य बढ़ती चली गयी।

कक्षा में जब शिक्षक विद्यार्थियों से विचारपूर्ण प्रश्न करने और उन्हें विचारपूर्ण विवाद करने के लिए प्रेरित करे तब उनका परिणाम निकालते हुए इन प्रक्रियाओं पर भी जोर देना चाहिए। यदि शिक्षण के प्रसंग में किसी उत्साहपूर्ण चर्चा को तथ्य सम्बन्धी संकीर्ण प्रश्नों के साथ समाप्त कर दिया जाय तो सम्भव है कि विद्यार्थियों को उसके सर्वाधिक मूल्यवान् परिणाम, अर्थात् अपनी वैयक्तिक और सामाजिक प्रगति प्रदर्शित करने का अवसर ही न मिले। यह भी सम्भव है कि ऐसा अवसर पुनः उपस्थित होने पर वे इतना उत्साह भी न दिखलायें। परन्तु यदि नैतिक गुणों को भी उतनी ही प्रमुखता दी जाय जितनी कि उपलब्ध ज्ञान को, तो विद्यार्थी समझ जायेंगे कि उनका स्कूल वस्तुतः किस बात को अधिक महत्व देता है।

यदि पाठ्य विषय से नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में सहायता लेनी हो तो उसका सम्बन्ध विद्यार्थियों के जीवन से भी होना चाहिए। बहुधा पाठ्य पुस्तकों में और विद्यार्थियों के स्कूल से बाहर के जीवन में बहुत अन्तर रहता है। एक जिले में स्थानीय शासन में परिवर्तन के लिए वोटिंग हो रहा था। वहां के स्कूल के प्रबन्धकर्ताओं ने आग्रह किया कि समाज-विज्ञान की कक्षाओं को पाठ्य पुस्तक की पढाई पर ही ध्यान देना चाहिए, और चुनाव के प्रश्नों में नहीं उलझना चाहिए। परन्तु दूसरे स्कूल वालों ने पार्टी-बाज़ी में न पड़ते हुए भी, चुनाव के उम्मीदवारों को अपने स्कूल में बुलाया, जिससे कि विद्यार्थी उनकी बातें सुनकर विवादास्पद प्रश्नों और उम्मीदवारों के सम्वन्ध में अपना मत निर्धारित करना सीख जायें।

पाठ्य पुस्तकों में गुणों की चर्चा बहुधा एक-सी नहीं होती। परन्तु पाठ्य पुस्तक के सर्वोत्तम होने पर भी उसका महत्व इतना नहीं होता जितना उसके प्रयोग की विधि का। उदाहरणार्थ, जब एक शिक्षिका ने पाठ्य पुस्तक में लिखा देखा कि एक बालक ने राजपरिवार में जन्म लिया, वह अनाथ हो गया, उसे सम्बन्धियों ने गोद ले लिया, और उसे 'राजकुलोचित' ही शिक्षण दिया, तब उसने अनेक पैने प्रश्न किये। हम यह निर्णय कैसे करें कि

किसको किस प्रकार का शिक्षण मिलता है ? बालकों के शिक्षण पर घर का क्या प्रभाव पड़ता है ? राज्य के अधिकार क्या हैं ? हम व्यक्ति का जो सम्मान करते हैं क्या उसकी इस कहानी के साथ संगति लग सकती है ?

स्कूल के नियमित विषय नैतिक गुणों के विकास का साधन बन सकते हैं, परन्तु ऐसी तर्कहीन कल्पना नहीं करनी चाहिए कि हम कुछ गुण तो विज्ञान से सीखते हैं, कुछ साहित्य से, और कुछ समाज-विज्ञान से। निःसन्देह प्रत्येक विषय के शिक्षण का महत्व भिन्न रहेगा, परन्तु प्रत्येक विषय का शिक्षण देते हुए हम उन बातों को समझने का यत्न करेंगे जिनसे हमें अपने जीवन को सार्थक और सोद्देश्य बनाने में सहायता मिलेगी। हम अच्छी तरह और ईमानदारी से किये हुए कामों के लिए प्रशंसा और आदर का भाव उत्पन्न करने का यत्न सदा ही करते रहते हैं — वह काम चाहे भूतकाल के महानुभावों द्वारा किया गया हो, चाहे वर्तमान काल के साहसिक पुरुषों द्वारा, और चाहे अपने से किसी परिश्रमी व्यक्ति द्वारा। हम जो कुछ सीख रहे हैं उसकी तुलना हम उन गुणों से सदा करते रहते हैं जो कि हम में पहले से विद्यमान हैं, और व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करते रहते हैं।

विज्ञान की एक कक्षा ने विविध जातियों के अन्तर का निश्चय करने के लिए रक्त की परीक्षा की, उपलब्ध साक्षियों पर विचार करने के लिए विशेषज्ञों को निमन्त्रित किया, सब जातियों का रक्त एक-सा ही होता है यह घोषणा करने के लिए पोस्टर तैयार किये, और उन पोस्टरों को दीवारों, दुकानों और ट्राम गाड़ियों पर लगा दिया। जिन व्यक्तियों ने यह कठिन परीक्षण किया और जिन्होंने अपनी सीखी हुई बात पर अमल किया, उनका समूह रहा अब भी विज्ञान की कक्षा ही। गणित की जिस कक्षा ने समाज पर टैक्स लगाने की पद्धतियों और दरों का अध्ययन किया वह रही तो गणित की कक्षा ही, परन्तु उसने एक आवश्यक प्रश्न को ठीक ठीक और कुशलता से हल करना सीख लिया। निबन्ध-लेखन की जिस कक्षा ने 'हमारे समाज में सुधार की आवश्यकता' पर कई निबन्ध लिखे, वह लेखन के साथ-साथ स्पष्ट, संक्षिप्त, और सजीव भाव-प्रकाशन का अभ्यास भी कर रही थी।

प्रत्येक अध्यापक प्रतिदिन प्रत्येक कक्षा में गुणों के विकास का काम करता रहता है। वह जो स्तर बना देता है, वह जिन कामों को पसन्द करता है, वह अपने विषय को जिस प्रकार पढ़ाता है, अपने विद्यार्थियों के साथ उसके

जो सम्बन्ध रहते हैं और वह उचित आचार और संगत विचार के लिए जो प्रेरणा देता है, उन सब का विद्यार्थियों पर प्रभाव पड़ता है।

मार्ग-निर्देश : स्कूल विद्यार्थियों को सलाह देने के लिए जो प्रवन्ध करता है वह भी नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में उपयोगी हो सकता है। स्कूल प्रत्येक विद्यार्थी के व्यक्तित्व का आदर करता है, यह इसी से प्रकट है कि वह यह व्यवस्था करता है कि प्रत्येक विद्यार्थी अकेला या कई विद्यार्थी मिल कर, शिक्षक की निपुण तथा मित्रतापूर्ण सलाह ले सकते हैं। इससे यह कल्पना स्वयमेव मिथ्या ठहर जाती है कि लोग यंत्रों के समान होते हैं और उन्हें यंत्रवत् शिक्षित किया जा सकता है। नवयुवकों के स्वतंत्र विकास और अनुभव की वृद्धि के लिए आवश्यक है कि उन्हें अपने माता-पिता के अतिरिक्त किसी विश्वस्त वयस्क के साथ मित्रवत् बातचीत करने का अवसर मिले। यह वयस्क सलाहकार विद्यार्थी को अध्ययन की कठिनाइयां हल करने में, आर्थिक समस्याओं का सामना करने में, और निजी नैतिक प्रश्नों को सुलझाने में सहायता दे सकता है। मंत्रणा देने और मार्ग का निर्देश करने का यह काम उत्तम तभी होता है जब यह न तो ऊपर से लादा जाय और न यह नाटकीय ढंग का हो। नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में इसकी सम्भावनाएं बहुत अधिक हैं।

कक्षा, घर और समाज के विशेष काम : कक्षा का समाचारपत्र निकालना, मिलजुल कर आदर्श गांव की नींव डालना, छतदार गाड़ी बनाना, बालोद्यान के फर्श पर रेल की लाइन बिछाना, अपने से कम समृद्ध देशों के बालक-बालिकाओं के लिए पुस्तकें और पेंसिलें भेजना, बहरों और गूंगों के स्कूल में बालकों के लिए छाया-नाटक खेलना, किसी वीर व्यक्ति के जीवन का अभिनय, अथवा विद्यार्थी-सभा की अध्यक्षता के किसी उम्मीदवार के पक्ष में आन्दोलन करना, और इसी प्रकार के अन्य बीसियों काम, इस प्रकार किये जा सकते हैं कि उनसे स्कूल में नैतिक गुणों का विकास हो और उनका शिक्षण सजीव तथा मनोरंजक बन जाय।

सामाजिक साधनों के प्रयोग से, निरे 'पुस्तक-शिक्षण' का दैनिक जीवन के साथ सामंजस्य हो जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों से कक्षा, स्कूल और समाज के जीवन में नैतिक गुणों के उपयोग का प्रत्यक्ष प्रदर्शन हो जाता है। खेतों का भ्रमण तथा निरीक्षण और समाज में विशेषज्ञों का उपयोग आदि

उन साधनों में से हैं जिनसे कि स्कूल के अनुभव और समाज के जीवन में सहयोग हो सकता है।

समाज की उपयोगी सेवा के अवसरों की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करके भी उनके सामने नैतिक और आत्मिक गुणों के प्रयोगों का प्रदर्शन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, स्कूल के बालक अपने गांव या मुहल्ले की सफाई करके, नगर के बाग में वृक्ष लगा कर, स्कूल के मैदान को सुन्दर बना कर अथवा युद्ध-निवृत्त सैनिकों के चिकित्सालय के लिए पत्र-पत्रिकाएं एकत्र करके, इस संतोष का अनुभव कर सकते हैं कि उन्होंने अपने समाज को सुधारने और सुखी बनाने के लिए कुछ किया। समाज के कोष या रेड क्रॉस में चन्दा देकर अथवा समाज सेवकों की सहायता करके भी सामाजिक उत्तर-दायित्व का अनुभव प्राप्त हो सकता है। परन्तु ऐसे कामों पर नियंत्रण अवश्य रखना चाहिए, जिससे कि विद्यार्थियों पर अधिक भार डालकर उन्हें कोई परेशान न करे अथवा उनसे कोई अनुचित लाभ न उठाये।

जिन कामों में विविध जातियों, देशों और आर्थिक स्थितियों के बालकों को एकत्र होने का अवसर मिले, उनसे वे उन विविध संस्कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं जिनके कारण अमेरिकी जीवन इतना समृद्ध हुआ है। विभिन्न लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध सुधारने के लिए कितने भी व्याख्यान और उपदेश क्यों न दिये जायें उनका उतना फल नहीं निकल सकता जितना कि विभिन्न रीति-रिवाजों और परम्पराओं को अधिकाधिक समझने से निकलता है।

शौक और क्लब : नाटक, विवाद, संगीत, फोटोग्राफी, क्लब और अन्य इसी प्रकार के जो काम स्कूल की ओर से आयोजित किये जाते हैं उन से भी नैतिक और आत्मिक गुण विकसित होने का अवसर मिलता है। ऐसे कामों से विद्यार्थियों की रुचि बढ़ती है, वे अधिक कुशल बनते हैं, और उक्त गुणों का उपयोग स्कूल से बाहर भी होने लगता है। उनसे विद्यार्थियों को मिलकर सहयोग-पूर्वक काम करने, अपना संगठन बनाने, और वैयक्तिक नेतृत्व का अनुभव करने के अवसर मिलते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि क्लब और विद्यार्थियों के अन्य काम, अभीष्ट गुणों को विकसित करने में सहायक तभी होंगे जब कि उन्हें उक्त गुणों से संगत विधि से किया जायगा।

स्कूल की एक घटना से यह बात स्पष्ट हो जायगी। क्लबों के नेताओं की एक बैठक में माता-पिताओं के लिए खुले मैदान में नाटक खेलने की एक योजना

बनाने के प्रयोजन से हुई। नाटक क्लब का नया नेता स्कूल में हाल में ही भर्ती हुआ था, और क्लबों के अन्य नेताओं के साथ उसकी प्रथम ही भेंट हो रही थी। जब किसी ने यह सुझाव रखा कि मंच को सजाने से कला-क्लब वालों को एक नया और मनोरंजक अनुभव मिलेगा, तब नये नेता ने इसे यह कह कर उड़ा दिया कि इसमें क्या रखा है, हमें जिस किसी पर्दे की जरूरत होगी उसे खरीद लेने में आसानी रहेगी। जब किसी ने यह प्रश्न किया कि जो नाटक खेले जायेंगे उनका चुनाव कर लिया गया या नहीं, तब उसने जवाब दिया कि उन्हें मैं चुनूंगा, और जब विज्ञान की चर्चा हुई तब उसने तत्संबंधी सुझावों पर अमल करने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि 'इस जनतंत्री ढंग से भी कहीं काम हुआ करते है!'

क्लबों के नेताओं की समिति के चेयरमैन ने शान्तिपूर्वक अन्य सदस्यों को यह समझाने का यत्न किया कि नाटक को सफल सभी क्लबों को मिलकर बनाना चाहिए और उसे किसी एक व्यक्ति की योग्यता के प्रकाशन का साधन नहीं बनने देना चाहिए। धीरे धीरे नवागत विद्यार्थी सहयोगपूर्वक काम करने के गुण को समझता गया। यह समझ जब उसकी अपनी चतुरता और योग्यता के साथ मिल गयी, तब उसकी उपयोगिता भी बढ़ गयी। क्लब के अन्य नेता जिन गुणों को अच्छा समझते थे उनका पालन करते हुए वे अपनी बात पर स्थिर रहे। इससे अपने में, और जिन गुणों को वे अच्छा समझते थे, उनमें उनकी आस्था और भी बढ़ गयी।

खेल : समाज और जाति के भेद प्रायः सभी सम्मिलित खेलों में हमजोलीपन, समानता और श्रेष्ठ योग्यता के लिए आदर की भावनाओं के सामने गौण पड़ जाते हैं। खेल में खरे बर्ताव के अनुभव से बालक कानून और न्याय का प्रयोग भी सीख जाते हैं। इन कारणों से, और विद्यार्थी और शिक्षक में निकट निजी सम्बन्धों के कारण, खेलों का शिक्षक नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करनें की दृष्टि से स्कूल में प्रायः सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति बन जाता है।

परन्तु कुछ स्कूलों में खेलों के कार्यक्रम का संचालन करते हुए सूक्ष्म चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है। खेलों में प्रायः जीत को मुख्य और खिलाड़ियों के शारीरिक और नैतिक विकास को गौण मान लिया जाता है। शिक्षक अपने ही हाथ में अत्याधिक नियंत्रण रख कर विद्यार्थियों में नेतृत्व के गुणों

का विकास नहीं होने देता। कभी कभी विजेता स्कूल की टीम के मुख्य खिलाड़ी को अपने महत्व का इतना अनुचित अभिमान हो जाता है कि वह अनुशासनहीन और उच्छृंखल व्यवहार करने लगता है। कभी कभी अच्छी टीम और मुख्य खिलाड़ी की पूछ इतनी अधिक होने लगती है कि जिन विद्यार्थियों को खेलों के कार्यक्रम की विशेष आवश्यकता होती है वही उसके लाभों से वंचित रह जाते हैं।

कभी कभी ये त्रुटियां शिक्षक के दोषों के कारण होती हैं। परन्तु स्कूल और समाज को भी अपना दोष समझना चाहिए। संभव है कि शारीरिक व्यायाम का शिक्षक यह सोचता हो कि मेरी आजीविका खेलों में स्कूल के जीतने पर निर्भर करती है। कहीं कहीं, कुछ व्यक्ति या संस्थाएं सरकारी स्कूलों के खेलों का नियंत्रण व्यापारिक लाभ की दृष्टि से अपने हाथ में ले लेती हैं। यह भी सम्भव है कि माता-पिता, विशेषतः पिता, यह देखकर कि उनका पुत्र भी टीम में शामिल है इतने फूल जायें कि व्यक्ति के विकास में वे मन और चरित्र के महत्व को भुला बैठें। कन्याओं और स्त्रियों के शारीरिक शिक्षण के कार्यक्रम ऐसी अनेक त्रुटियों से बचे रहते हैं, क्योंकि उनमें सारे स्कूल की एक टीम बनाने की अपेक्षा स्कूल की आन्तरिक प्रतियोगिता पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

खेलों के कार्यक्रम बनाने में लक्ष्य यह रखना चाहिए कि उनसे व्यक्ति की योग्यता का और सभी विद्यार्थियों के नैतिक और आत्मिक गुणों का पूरा पूरा विकास हो सके। मुख्य लक्ष्य विद्यार्थी का लाभ होना चाहिए, खेलों में स्कूल का नाम नहीं।

स्कूल-जीवन के अनेक कामों में से खेलों का कार्यक्रम ऐसा काम है जिसमें यह निश्चय किया जाना चाहिए कि उत्कृष्ट योग्यता के लिए क्या और कैसा इनाम दिया जायगा। उक्त निश्चय करते हुए मुख्य ध्यान यह रखना चाहिए कि जो इनाम दिये जायें उनसे स्कूल के सब विद्यार्थियों का नैतिक और आत्मिक गुणों में उन्नति करने का उत्साह बढ़ता है या नहीं।

स्वस्थ वैयक्तिक सम्बन्धों के लिए सरकारी स्कूलों को अच्छे कार्यकर्ताओं और सुविधाओं की आवश्यकता होती है

नैतिक और आत्मिक गुण विकसित करने के लिए ऊपर जिस प्रकार के शिक्षण का वर्णन किया गया है वह बहुत कुछ व्यक्तियों के पारस्परिक

सम्बन्धों पर निर्भर करता है। यदि शिक्षकों और शिक्षितों का सम्बन्ध न तो अति तीव्र भावनाओं पर आधारित हो और न निर्जीव उपेक्षावृत्ति पर, तो वह स्वयं भी नैतिक और आत्मिक विकास के गुणों का एक सफल साधन बन जाता है। ऐसी परिस्थिति में जो पाठ पढ़ाया जाता है शिक्षक उसका स्वयं एक मूर्त रूप बन जाता है।

छोटे छोटे समूहों में भी गुणों का विकास अच्छी प्रकार हो सकता है। कई दृष्टियों से तो गुणों का अभ्यास सफलतापूर्वक करने के लिए छोटे समूहों की ही आवश्यकता पड़ती है। परन्तु छोटे समूहों के शिक्षण की पूर्ति के लिए शिक्षकों और शिक्षितों को मित्रतापूर्ण वैयक्तिक सम्पर्क का अवसर मिलते रहना चाहिए। इसके लिए समय, चतुरता और सहानुभूति की आवश्यकता होती है। बहुतेरा चाहते हुए भी बहुत से स्कूल इस काम को भली प्रकार करने के लिए आवश्यक योग्यता के शिक्षक पर्याप्त संख्या में नहीं रख पाते।

शिक्षकों की योग्यता और संख्या में कमी का मुख्य कारण यह है कि महायुद्ध के समय शिक्षक का पेशा अपनाने वाले कम रह गये, जन-संख्या एक दम बढ़ गयी, और फलतः प्रारम्भिक स्कूलों में भरती होने वाले बालकों की संख्या भी तेजी से बढ़ने लगी। शिक्षकों की समस्त संख्या में अपेक्षाकृत न्यून वृद्धि होती तो भी गुरुओं और शिष्यों के वैयक्तिक सम्बन्धों में बहुत सुधार हो सकता था। परन्तु गुरुओं और शिष्यों की संख्या में अनुपात ऊंचा होने के कारण जो विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न हुईं उनमें प्रत्येक बालक पर ध्यान देना कठिन ही नहीं, अपितु प्रायः असम्भव हो गया।

जो समाज अपने बालकों को लापरवाही से तंग इमारतों में ठूंस देता है; तहखानों, ड्योढ़ियों, झोपड़ियों, और अन्य अनुपयुक्त स्थानों को कक्षाओं में परिणत कर देता है; कारखानों के मजदूरों की तरह उनकी पालियां बना देता हैं और उन्हें थके हुए और काम से दबे हुए शिक्षकों के सुपुर्द कर देता है; वह अपने आचरण द्वारा यह घोषणा कर देता है कि उसे अपने बालकों में नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास की विशेष चिन्ता नहीं है। जो लोग अमेरिकी नवयुवकों के नैतिक और आत्मिक गुणों को ऊंचा उठाने को उत्सुक हों उन्हें सोच कर देखना चाहिए कि क्या उन्होंने शिक्षण की ऐसी सुविधाओं का प्रबन्ध कर दिया है जिनमें कि गुरुओं और शिष्यों में लाभदायक सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे।

शिक्षकों और सरकारी स्कूलों के अधिकारियों को चाहिए कि समाज की उदासीनता अथवा आर्थिक असमर्थता के कारण भारी कठिनाइयों का सामना

होने पर भी वे आधारभूत गुणों के विकास का प्रयत्न यथाशक्ति करते ही रहें। तो भी वस्तुस्थिति को प्रकट करने की दृष्टि से यहाँ इस बात का जिक्र कर देना आवश्यक है कि नागरिकों की इस प्रकार की उपेक्षाओं के कारण नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण में सरकारी स्कूलों का प्रभाव निश्चय ही घट जाता है। इन परिस्थितियों की उपस्थिति मात्र से नैतिक और आत्मिक गुणों की लापरवाही करने की आदत पड़ जाती है।

सरकारी स्कूलों को अपने विद्यार्थियों के धार्मिक विश्वासों का आदर करना चाहिए

सरकारी स्कूलों के अधिकतर शिक्षक किसी न किसी धर्म के अनुयायी होते हैं। वे कक्षाओं में नवयुवकों के सामने जिन गुणों और आचरणों का उदाहरण उपस्थित करते हैं उन पर उनके धार्मिक विश्वासों का भी प्रबल प्रभाव होता है।

निःसन्देह, अमेरिकी सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को किसी भी धर्म या मत से सम्बन्ध रखने या न रखने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। सरकारी स्कूलों में नियुक्ति के समय किसी भी प्रकार की धार्मिक परीक्षा की शर्त नहीं लगानी चाहिए, तथापि सरकारी स्कूलों के शिक्षक अपने व्यावसायिक नियमों से बाधित होते हैं कि वे विद्यार्थियों को अपने धर्म के सिद्धान्तों और विश्वासों का अनुयायी बनाने का यत्न न करें।

सरकारी स्कूलों को चाहिए कि उनके यहाँ जो भी बालक आयें उन सबके धार्मिक विश्वासों के प्रति वे मित्रता और सहानुभूति का भाव रखें। इसे प्रकट करने के लिए सिक्षकों को अपने आर्मिक विश्वासों को दबाने अथवा किसी धार्मिक मत का समर्थन करने की आवश्यकता नहीं। शिक्षकों की भाषा और भाव ऐसे होने चहिएं कि प्रत्येक बालक समझे कि मेरे धार्मिक विश्वासों को मेरे लिए ठीक माना जा रहा है। इससे प्रत्येक बालक अपनी स्थिति में सन्तोष का अनुभव करेगा, वह चाहे किसी धर्म को मानता हो चाहे न मानता हो।

जिस स्कूल में अनेक मतों के अनुयायी बालक पढ़ते हों, उसे इस विभिन्नता का शिक्षण के एक उत्कृष्ट अवसर के रूप में पूरा लाभ उठाना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि जब कभी अवसर हो तब वह बालकों को अपने धार्मिक

आचारों और विचारों की स्वाभाविक रूप में चर्चा करने की अनुमति देने में संकोच न करे । प्रत्येक बालक के इस अधिकार का आदर करने के लिए शिक्षक को यह मान लेना पड़ेगा, प्रत्युत उसे यह अनुभव करना पड़ेगा, कि वह इन सब धार्मिक आचारों और विचारों के लिए आदर और श्रद्धा का भाव रखता है ।

अमेरिकी जीवन में धर्म का स्थान क्या है, इस प्रश्न पर अति यथार्थ रूप में चर्चा करने का कट्टर नास्तिकों और कट्टर अंधविश्वासियों, दोनों की ओर से एक सा विरोध हो सकता है । परन्तु इस प्रकार के लोगों के कारण अमेरिकी सार्वजनिक शिक्षण के इस महत्वपूर्ण पहलू को विकृत नहीं होने देना चाहिए। सम्भव है कि कुछ बालक कम्यूनिस्ट अथवा अन्य तानाशाही विचारों के घरों के हों, परन्तु अमेरिकी सरकारी स्कूल उन्हें भी जनतंत्र के ही विचारों का शिणक्ष देंगे इसी प्रकार, सरकारी स्कूलों को, सब बालकों को मनुष्य मात्र के धार्मिक विचारों का उचित आदर करने का, और मनुष्य के इतिहास और संस्कृति में धर्म का जो भाग रहा है उसके संबंध में आधारभूत सत्यों का शिक्षण देना ही चाहिए । शिक्षकों को यह प्रकट करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए कि वे अपने बालकों का धार्मिक कार्यों में भाग लेना पसंद करते हैं ।

इस प्रकार, जब कभी कक्षा में विवाद के प्रसंग में धार्मिक आचार-विचार का कोई प्रश्न खड़ा हो जाय तब शिक्षक उसे यह कह कर टाले या दबाए नहीं कि इस प्रश्न पर सरकारी स्कूल में विचार करने की अनुमति नहीं है । यह ठीक हैं कि अमेरिकी जनतंत्र धार्मिक परम्पराओं पर आधारित है । निःसन्देह नैतिक और आत्मिक जनतंत्री गुणों का एक मात्र सूत्र धर्म नहीं है, परन्तु यह एक महत्वपूर्ण सूत्र अवश्य है । अन्य किसी कारण से न भी हो, तो इस एक कारण से भी सरकारी स्कूलों में धर्म के प्रति आदर के भाव का वातावरण रहना चाहिए । सरकारी स्कूलों को सार्वजनिक शिक्षण में धार्मिक विश्वासों को तुच्छ मानकर उनकी उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए ।

सरकारी स्कूलों को धार्मिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता की रक्षा करनी चाहिए

जो स्त्री पुरुष यूरोपीय संस्कृति को लेकर हमारे देश में आये थे वे धर्म और राज्य में एकता की यूरोपीय भावना भी साथ लाये थे ।

अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने भी हाल में कहा था :

"इस देश में पहले-पहल बसने वालों में से बहुत से लोग यूरोप से यहां इसलिए आये थे कि वे उन कानूनों के बन्धनों से बच सकें जो कि उन्हें सरकार द्वारा स्वीकृत गिरजाघरों में जाने और उनका अनुयायी बनने को विवश करते थे…जो धार्मिक मत किसी काल विशेष या देश विशेष में शासन को प्रभावित कर लेता था या उसके साथ मिला होता था उसका जबरदस्ती अनुयायी बनाने के प्रयत्नों में स्त्रियों और पुरुषों पर जुरमाने कर दिये जाते थे, उन्हें जेल में डाल दिया जाता था, क्रूरता-पूर्वक सताया जाता था, यहां तक कि मार भी डाला जाता था। जिन अपराधों के लिए ये सज़ाएं दी जाती थीं, वे इस प्रकार के होते थे जैसे कि सरकार-समर्थित सम्प्रदाय के पादरियों के विचारों की निरादर-पूर्वक चर्चा करना, उनके गिरजाघरों में न जाना, उनके सिद्धान्तों में अविश्वास प्रकट करना और उनकी सहायता के लिए टैक्स और दशांश न देना, आदि।

"पुरानी दुनिया की ये प्रवृत्तियां नये अमेरिका की भूमि में भी आ गयीं और फूलने फलने लगी थीं…कैथोलिकों का उनके धर्म के कारण पीछा किया और दमन किया जाता था; जो क्वैकर अपनी बुद्धि और मन्तव्य के अनुसार चलते थे उन्हें जेल जाना पड़ता था; कुछ प्रभावशाली प्रोटेस्टेंट मतों को बैप्टिस्ट विशेष रूप से अप्रिय थे; अनेक मतों के स्त्री और पुरुष यदि किसी प्रदेश विशेष में अल्पसंख्या में होते थे तो उन्हें सताया जाता था…

"ये प्रवृत्तियां इतनी आम हो गयी थीं कि स्वतन्त्रता-प्रेमी उपनिवेश-वासियों को धक्का लगा और वे उनसे घृणा करने लगे। पादरियों के वेतन देने के लिए और गिरजाघर व उनकी जायदादें बनाने, खरीदने तथा सुरक्षित रखने के लिए टैक्स लगते और वसूल होते देखकर उनका क्षोभ भड़क उठा। इन्हीं भावनाओं का प्रकाशन देश के शासन-विधान में प्रथम संशोधन के रूप में हुआ…लोग इस निश्चय पर पहुंचे कि प्रत्येक व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा ऐसे ही शासन में भली प्रकार हो सकती है जिसके हाथ से किसी एक या अनेक धर्मों के समर्थन के लिए या उनकी किसी भी प्रकार सहायता करने के लिए टैक्स लगाने का

अथवा किसी भी व्यक्ति या वर्ग के धार्मिक विश्वासों में हस्तक्षेप करने का अधिकार छीन लिया जाय···

"प्रथम संशोधन की 'धर्म की स्थापना' वाली धारा का कम से कम यह अर्थ तो है ही : राज्यों या केन्द्र की सरकारों में से कोई भी किसी मत को नहीं चला सकती। न उन में से कोई किसी एक या अनेक धर्मों की सहायता करने के लिए या किसी एक धर्म से पक्षपात करने के लिए कानून बना सकती है। न उनमें से कोई किसी व्यक्ति को अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी मत के पूजा-स्थान में जाने या न जाने के लिए अथवा किसी धर्म में विश्वास करने या न करने के लिये विवश या प्रभावित कर सकती है। किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म को मानने या न मानने और उस पर आचरण करने या न करने के कारण अथवा किसी गिरजाघर में जाने या न जाने के कारण दंडित नहीं किया जा सकता। कोई भी छोटा या बड़ा टैक्स किसी धार्मिक कार्य या संस्था की सहायता के लिए नहीं लगाया जा सकता, उसका नाम चाहे कुछ भी हो और उसका धर्म को सिखाने या पालन कराने का रूप चाहे कुछ भी हो। राज्यों और केन्द्र की सरकारों में से कोई भी किसी धार्मिक संघटन या संघटनों के कामों में गुप्त या प्रकट रूप से भाग नहीं ले सकती। जैफर्सन के शब्दों में, कानून-द्वारा-धर्म-की-स्थापना-विरोधी धारा का प्रयोजन "धर्म और राज्य के मध्य में विभाजन की दीवार खड़ी कर देना था।"[१]

अमेरिका के शासन-विधान में कहा गया है कि "संयुक्तराज्य अमेरिका में किसी भी पद पर या सार्वजनिक ट्रस्ट में नियुक्ति के लिए योग्यता जांचने की कोई धार्मिक परीक्षा नहीं ली जायगी," और "कांग्रेस किसी धर्म की स्थापना के लिए अथवा उसके स्वतंत्रतापूर्वक पालन को निषिद्ध करने के लिए कोई कानून नहीं बनायेगी।" यह विचार शासन-विधान के अन्य विचारों के समान ही क्रांतिकारी है। धर्म की स्वतंत्रता सचमुच अमेरिका की एक बहुत बड़ी सफलता है।

प्रत्येक जनतन्त्री समाज अपने प्रत्येक नागरिक को अपनी विवेक-बुद्धि और शिक्षा-दीक्षा के अनुसार किसी बात को मानने या न मानने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। सरकारी स्कूलों को अपने विद्यार्थियों के सामने इस अधिकार

---

१. "एवरसन बनाम बोर्ड आफ एजुकेशन आफ यूइंग टाउनशिप" के मुकदमे में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट का फैसला (१९४७)

के अर्थ पर विशेष बल देना चाहिए। ठीक प्रकार क्रियान्वित करने पर, इस अधिकार का अर्थ न केवल मन्तव्य की स्वतंत्रता, अपितु दूसरों के मन्तव्यों का आदर करना भी होता है। परन्तु सरकारी स्कूलों को यह कह कर धर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि उसे मान लेने में कोई हर्ज नहीं है। जब हम यह कहते हैं कि सरकारी स्कूलों को धर्म की शिक्षा नहीं देनी चाहिए, तब साथ ही हम यह सर्वथा स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि धर्म के विरुद्ध शिक्षण देना भी उतना ही असहनीय है।

उदाहरणार्थ, विज्ञान का जो शिक्षक अपने विद्यार्थियों को यह कहता है कि धार्मिक विश्वासों की निन्दा करनी चाहिए क्योंकि वे 'अवैज्ञानिक' होते हैं, वह अपने विद्यार्थियों की अपरिपक्वता का अनुचित लाभ उठाता और साथ ही उनके सामने अपनी अपरिपक्वता का परिचय देता है। प्रत्युत सत्य यह है कि अधिकतर वयस्कों को धर्म के सम्बन्ध में अपना बाल-सदृश ज्ञान सुधार लेने और परिपक्व बना लेने की आवश्यकता होती है। सुधार की यह प्रक्रिया बुद्धि के परिपक्व होने का ही एक रूप है। परन्तु यह सुधार अपने पूर्व ज्ञान के प्रति तुच्छता और निरादर की भावना से मिश्रित नहीं होना चाहिए। शिक्षक, किसी धर्म विशेष का पक्षपात किये बिना भी, अपने विद्यार्थियों को घर और परिवार की धार्मिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

कुछ सरकारी स्कूल धार्मिक शिक्षण के लिए विद्यार्थियों को अलग समय देने की विधि अपनाते हैं। इस विधि के अनुसार बालकों को उनके माता पिता द्वारा पसन्द किये हुए धर्म के शिक्षण की कक्षाओं में जाने देने के लिए, उन पर से अन्य नियमित कक्षाओं में जाने की पाबन्दी हटा ली जाती है। ये धार्मिक कक्षाएं, कहीं सरकारी स्कूलों की इमारत में ही और कहीं उसके बाहर लगती हैं। १९४८ में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया था कि ऐसा करना नागरिकों के मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है। शैम्पेन (इलिनोय राज्य) का सरकारी स्कूल ऐसा करता था, और उसके विरुद्ध एक नागरिक द्वारा अपील करने पर उक्त कोर्ट ने यह निर्णय दिया था। कोर्ट के बहुमत के निर्णय में बतलाया गया था कि उक्त राज्य के सरकारी स्कूलों में उपस्थिति के नियमों का, उनकी प्रबन्ध व्यवस्था का, और सार्वजनिक टैक्स से खरीदी गयी सम्पत्ति का साम्प्रदायिक शिक्षण के लिये उपयोग, अमेरिका के शासन-विधान के पहले और चौदहवें संशोधनों के विरुद्ध है।

इस प्रकार की कानूनी और शासन सम्बन्धी कठिनाइयों से बचने के लिए कभी कभी यह सुझाव दिया जाता है कि सरकारी स्कूलों में केवल उन धार्मिक सिद्धान्तों का शिक्षण दिया जाय जिन्हें सब मत और सम्प्रदाय मानते हों। परन्तु इस सुझाव पर विचार करने के पश्चात् प्रकट हुआ कि नैतिक और आत्मिक प्रश्नों से भिन्न, विशुद्ध धार्मिक प्रश्नों पर, अधिक ऐकमत्य नहीं है। बाइबिल, और उसके भी ओल्ड टैस्टामेंट के भाग के शिक्षण तक को, धर्म के 'सहमत' क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त इस तथ्य को भी ध्यान में रखना ही पड़ेगा कि यद्यपि क्रिश्चियन मतों के अनुयायी अमेरिका में अन्य धार्मिक मतों के अनुयायियों की अपेक्षा अधिक हैं, परन्तु हमारे सरकारी स्कूलों में अन्य धार्मिक मतों के अनुयायी विद्यार्थियों और किसी भी धर्म को न मानने वाले व्यक्तियों की संख्या भी उपेक्षणीय नहीं है।

जिन माता-पिताओं की अपने बालकों को धार्मिक शिक्षण दिलाने की बहुत तीव्र इच्छा हो वे उसे अपने प्रयत्नों और अपने समान विचार के माता-पिताओं के सहयोग से पूरा कर सकते हैं। बहुत कम बालक वर्ष के आधे दिन स्कूल जाते हैं, और स्कूल के दिनों में भी बालकों का आधे से कम समय स्कूल में खर्च होता है। यदि धर्म की आवश्यकताएं पूरी करना आवश्यक ही समझा जाय तो माता-पिता अपने बालकों को उन पृथक् धार्मिक स्कूलों में भर्ती करा सकते हैं जो कि कानून और रीति-रिवाज द्वारा अनुमत और रक्षित हैं।

सरकारी स्कूल धर्म के विषय में शिक्षण दे सकते हैं और उन्हें देना भी चाहिए

सरकारी स्कूल किसी धर्म विशेष का शिक्षण दिये बिना भी धर्म का वास्तविक परिचय अपने बालकों को करा सकते हैं। कक्षा में धर्म की या धार्मिक संस्थाओं की चर्चा भी न करने का अर्थ अमेरिकी जीवन के एक महत्वपूर्ण भाग की उपेक्षा कर देना होगा। हमारी संस्कृति, साहित्य, कला, इतिहास और वर्तमान समस्याओं को भली प्रकार समझने के लिए धर्म से परिचय अत्यन्त आवश्यक है।

धार्मिक सिद्धान्त विवादास्पद होते हैं, यह तर्क सरकारी स्कूलों में धर्म के विषय में शिक्षण को निषिद्ध ठहरा देने के लिए पर्याप्त नहीं है। स्कूल में आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों का अध्ययन और अध्यापन करने के पक्ष में युक्ति यह दी जाती है कि सामयिक समस्याओं का ज्ञान विद्यार्थियों को भी होना चाहिए और उन्हें उनके सम्बन्ध में ठीक निर्णय कर सकने का अभ्यास करवाना चाहिए। धर्म के विषय में शिक्षण के प्रश्न पर भी इसी भावना से विचार करना चाहिए। विवादास्पद समस्याओं के शिक्षण में साधारण निर्देश भी सहायक हो सकते हैं। यदि आवश्यकता हो तो इस प्रकार के प्रश्नों का शिक्षण यथार्थ रूप में प्रदान करने के लिए शिक्षकों को विशेष सहायता और सूचनाएं भी दी जा सकती हैं।

यद्यपि सरकारी स्कूल मत-मतान्तरों का शिक्षण नहीं दे सकते तो भी वे धार्मिक सिद्धान्तों का आवश्यक परिचय विद्यार्थियों को करवा सकते हैं। विविध धार्मिक मतों ने अमेरिकी जीवन में नैतिक और आत्मिक गुणों की रक्षा के लिए जो महत्वपूर्ण काम किया है उसका, और मानव जाति के इतिहास में जो हिस्सा उन्होंने लिया है उसका भी ज्ञान स्कूल विद्यार्थियों को दे सकते हैं और वह उन्हें देना भी चाहिए। इस सुझाव की उपयोगिता एक इसी बात से स्पष्ट है कि इस देश में अनेक प्रकार के धर्म प्रचलित हैं। कितने वयस्क ऐसे हैं जो कि बड़े-बड़े धर्मों की किन्हीं प्रश्नों पर परस्पर सहमति अथवा असहमति का विचार किये बिना, स्पष्टता से यह बतला सकते हैं कि उनके सिद्धान्त क्या हैं? कितने गैर-कैथोलिक जानते हैं कि कैथोलिकों का धर्म क्या है? कितने कैथोलिक ठीक ठीक जानते है कि प्रोटेस्टन्टों से उनके मतभेद क्या हैं? कितने ईसाई जानते हैं कि यहूदियों का धर्म और धार्मिक प्रथाएं क्या हैं? इस्लाम के या दिन-प्रतिदिन संकुचित होते हुए इस संसार के अन्य बड़े बड़े धर्मों के महत्वपूर्ण सिद्धान्त क्या हैं? सरकारी स्कूलों में धर्म सम्बन्धी ज्ञान करवाने से हमारे देश की एकता, संसार के अन्य राष्ट्रों के विषय में हमारे ज्ञान, और मनुष्य जाति की उत्तम धार्मिक परम्पराओं के लिए हमारे आदर-भाव में वृद्धि हो जायगी। हां, यह ठीक है कि जिन बातों के शिक्षण से किसी की वैयक्तिक भावनाओं पर आघात होता हो उनके शिक्षण की भांति, धर्म-सम्बन्धी ज्ञान देते हुए भी विद्यार्थियों की परिपक्वता या अपरिपक्वता का उचित ध्यान रखना ही पड़ेगा।

समाज-विज्ञान के पाठ्य-क्रम में विद्यार्थियों को यथाप्रसंग यह बतलाना

चाहिए कि विविध मत-मतान्तरों के विषय में तथ्य क्या हैं और अमेरिका में उनका प्रभाव कितना है। उदाहरणार्थ, प्रमुख धार्मिक संगठन कौन से हैं; उनके अनुयायियों की संख्या कितनी है; टैक्स लगाने, न्यायालयों और देश की सेना के सम्बन्ध में धर्म की कानूनी स्थिति क्या है—इन प्रश्नों का नागरिक और सामाजिक महत्व स्पष्ट है, इसलिए सरकारी स्कूलों को इनके विषय में जानकारी करवानी चाहिए।

इसी प्रकार यदि विद्यार्थियों को यह नहीं बतलाया जाता कि विविध धर्मों के आचारों और विचारों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ता है तो अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का उनका ज्ञान अपूर्ण ही रह जायगा।

यद्यपि धर्म के विषय में अध्ययन करने से युवकों के साधारण तथा नैतिक शिक्षण में सहायता मिलती है, तो भी माता-पिताओं या धर्म-गुरुओं को यह नहीं समझना चाहिए कि उससे धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता पूरी हो जाती है। हमारे समाज ने एक प्रकार का व्यावहारिक श्रम-विभाजन कर लिया है, जिसके अनुसार उत्तरदायित्व धार्मिक संस्थाओं, घरों और सरकारी स्कूलों में बंट गया है। धर्म-गुरु और माता-पिता जो नींव डाल देते हैं उस पर निर्माण करते हुए सरकारी स्कूल नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व वहन करते हैं। जो बालक अपने माता-पिताओं की लापरवाही के कारण अथवा उनके सोच-समझ कर किये गये निश्चय के कारण धार्मिक शिक्षण से वंचित रह जाते हैं, उनकी भी अच्छे सरकारी स्कूल अन्य अनेक प्रकार बहुत कुछ सेवा कर सकते हैं।

परिणाम

कमीशन का विश्वास है कि नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में सरकारी स्कूल निम्न कार्यों के द्वारा सक्रिय सहायता कर सकते हैं :

१. अपने समाज द्वारा अंगीकृत नैतिक और आत्मिक गुणों को अपना लक्ष्य मान कर,

२. प्रत्येक शिक्षक का उत्साह बढ़ा कर और उसे सहायता देकर,

३. अध्यापकों के शिक्षण में नैतिक और आत्मिक गुणों पर ध्यान देकर,

४. प्रत्येक अवसर पर इन नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण देकर,

५. स्कूल के समस्त साधनों का उपयोग करके,

६. गुरु और शिष्य में स्वस्थ वैयक्तिक सम्बन्ध विकसित करने के लिए आवश्यक समय देकर और कार्यकर्ता रखकर,

७. विद्यार्थियों के धार्मिक आचारों और विचारों के प्रति सहानुभूति और मित्रता का भाव रख कर,

८. धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ा कर और

९. धर्म के विषय में यह ज्ञान करवा कर कि वह हमारी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है ।

इस कार्यक्रम को हम नैतिक और आत्मिक गुणों की समस्या के हल का पूर्ण और निर्दोष अथवा एकमात्र हल मानकर पेश नहीं कर रहे हैं । परन्तु हमें विश्वास है कि इससे सरकारी स्कूलों में एक विवादास्पद और अति महत्व-पूर्ण मामले से निपटने का एक व्यावहारिक मार्ग निकल आयेगा । जो व्यक्ति हमारे समाज में नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करना चाहते हैं उनमें से किसी को भी, आशा है कि, यहां पेश किया गया कोई सुझाव अप्रिय नहीं लगेगा ।

पंचम अध्याय

मजेदार

पंचम अध्याय

साझेदार

यह तो सभी जानते हैं कि शिक्षण स्कूल की समाप्ति के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। साथ ही यह भी उतना ही सत्य है यद्यपि उतना स्पष्ट नहीं, कि स्कूल में शिक्षण उस समय के अतिरिक्त भी होता ही रहता है जो कि विद्यार्थी कक्षा में बिताता है। नवयुवकों में नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास अनेक प्रकार होता है। स्कूल इन गुणों के विकास का महत्वपूर्ण साधन है, परन्तु उसे सदा ही घर, धार्मिक संस्थाओं और समाज का साझेदार बनकर रहना पड़ता है। इनके अतिरिक्त सामूहिक सूचना-संचार के चार बड़े साधनों — समाचारपत्र, रेडियो, टैलिविजन और सिनेमा — को, और राजनीतिक, सामाजिक, तथा आर्थिक संस्थाओं के सम्पूर्ण सप्तक को भी प्रभावशाली साझेदारों में सम्मिलित मानना चाहिए। ये सब, बालकों और युवकों के विकसित होते हुए व्यक्तित्व को प्रभावित करते रहते हैं।

इस उलझी हुई साझेदारी में स्कूल का प्रभाव अनेक कारणों से अन्य साझेदारों की अपेक्षा अधिक रहता है। स्कूल का सम्बन्ध जीवन के ऐसे भाग से पड़ता है जो किसी भी बात से सुगमता-पूर्वक प्रभावित हो जाता है। यह जनता के बहुत बड़े भाग की सेवा करता है। यह प्रमुख संस्था है जो कि एकमात्र शिक्षण के प्रयोजन से स्थापित की जाती है।

परन्तु फिर भी जब नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण पर व्यापक दृष्टि से विचार किया जायेगा तब उन भले और बुरे प्रभावों पर भी विचार करना ही पड़ेगा जो कि कक्षा से बाहर की परिस्थितियां बालकों और युवकों पर डालती रहती हैं। उदाहरणार्थ, हाल के निरीक्षण से ज्ञात हुआ है कि स्कूल में प्रविष्ट होने से पहले के समय का कितना महत्व होता है। इस समय बालक प्रायः पूर्णतया घर के प्रभाव में रहता है और स्कल में प्रविष्ट होने

के पश्चात् भी, जो बालक पूरे बारह वर्ष तक स्कूल जाता रहता है, वह अपने जागने के समय का केवल पांचवां भाग स्कूल में बिताता है, शेष चार भाग स्कूल से बाहर। स्कूल से घर पर करके लाने के लिए जो काम दिया जाता है उसमें तथा पढ़ाई से अतिरिक्त अन्य कामों में बालक का जो समय व्यतीत होता है उसको भी यदि स्कूल के ही समय में सम्मिलित कर लिया जाय, तो भी बालक के जागने के समय का मुश्किल से आधा भाग स्कूल में व्यतीत होता है।

इसलिए सब सामाजिक संस्थाओं को, नवयुवकों में नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करने की अपनी साझी जिम्मेवारी को अधिक स्पष्टता से अनुभव कर लेना चाहिए। जहां ये संस्थाएं सहयोगपूर्वक काम करती हैं वहां तो लाभ कई गुणा हो जाता है और जहां इनमें सहयोग नहीं रहता वहां इनके अच्छे से अच्छे संकल्प भी मिट्टी में मिल जाते हैं।

अनेक प्रबल प्रभाव स्कूलों की सफलता में बाधक होते हैं

नैतिक और आत्मिक गुणों को विकसित करने का स्कूल का सारा प्रयत्न उन स्थानों पर नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है जहां कि स्कूल से बाहर की प्रबल शक्तियां उसके विपरीत कार्य कर रही होती हैं। फिर भी कभी कभी स्कूलों की आलोचना करते हुए उन पर नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण में सफल न होने का आक्षेप किया जाता है। परन्तु यह कोई नहीं सोचता कि सरकारी स्कूलों के कार्यकर्त्ताओं को शिक्षण-विरोधी उन बलवान् शक्तियों को भी वश में करना पड़ता है जिन्हें प्रायः प्रत्येक समाज में फलने फूलने दिया जाता है, और जब वे इस कार्य में सफल नहीं हो पते तब ताना देकर कहा जाता है कि तुम तो 'नास्तिक' और अयोग्य हो; और इन परिस्थितियों में नैतिक और आत्मिक शिक्षण का समस्त भार अपने ही कन्धों पर पड़ता देखकर स्कूलों के कार्यकर्त्ता हार-से जाते हैं।

समस्त उत्तम गुणों का निवास स्कूल में ही नहीं होता, और न बालकों और युवकों की सारी बुराइयों का दोष बाहर की परिस्थितियों पर डाला जा सकता है। तो भी यह बात प्रायः सत्य है कि जो लोग सरकारी स्कूलों

की सफलताओं को अति तुच्छ बताया करते हैं वे बहुधा न तो यह जानते हैं, और न जानने का यत्न करते हैं कि वहां सचमुच होता क्या है। तथापि स्कूलों को हमारी संस्कृति के दोषों और गुणों की जिम्मेवारी बहुत कुछ अपने सिर लेनी ही पड़ेगी। दूसरी ओर, स्कूलों की निन्दा या प्रशंसा, उतनी ही करनी चाहिए जितनी के वे वस्तुतः पात्र हों। सब मिलाकर यह दावा करना शायद ठीक ही रहेगा कि यदि घर, धर्म-स्थान और व्यापारिक तथा सामाजिक संस्थाएं भी मिलकर जीवन को सुधारने का प्रयत्न उतनी ही तत्परता, निरन्तरता और उत्साह से करें जितना कि स्कूल करते हैं तो अमेरिकी युवकों के नैतिक और आत्मिक गुणों में शीघ्र ही पर्याप्त सुधार दीखने लगेगा। सरकारी स्कूल नैतिक और आत्मिक गुणों के शिक्षण में धर्माचार्यों, माता-पिताओं और अन्य लोगों का सहयोग सदा लेना चाहते और उसका सदा स्वागत करते हैं।

चरित्र-निर्माण में सब से अधिक भाग घर का होता है

घर ही सबसे पहले बालक को मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्ध का, सहयोग का, समस्याओं को मिल जुल कर युक्ति-पूर्वक हल करने का, निजी लाभ से पहले दूसरों के लाभ का विचार करने का, और वैयक्तिक योग्यता का आदर करने का पाठ सिखलाता है। ईमानदारी और नागरिकता के उत्तरदायित्व का जैसा निर्वाह माता-पिता करेंगे, बालकों के भी वैसा ही करने की सम्भावना रहेगी।

अधिकतर समाजों में अधिकांश घरों का नैतिक स्तर ऊंचा ही होता है। अधिकतर माता-पिताओं को अपने बालकों की शारीरिक और चारित्रिक उन्नति का पर्याप्त ध्यान रहता है। अधिकतर घरों में परिवार के सब सदस्यों के साथ आदर और प्रेम का व्यवहार किया जाता है। बालक इस प्रकार के व्यवहार से सुख और सुरक्षा का अनुभव करते हैं। इस प्रकार के घरों में नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास पारिवारिक जीवन के अंग के रूप में स्वयमेव होता रहता है। जो समाज ऐसे घरों से मिल कर बना है वह सरकारी स्कूल का सफल साझेदार बन सकता है। इन परिस्थितियों में नैतिक और आत्मिक गुणों की नींव घर में ही पड़ जाती है और स्कूल उसे स्थिर रखने और उन्नत करने में सहायक हो सकता है।

इसके विपरीत, घर कभी कभी बाधक प्रभाव भी डालता है। जिस बालक के माता-पिता विचार-पूर्वक वोट डालने की परवाह नहीं करते उसे नागरिकता के कर्त्तव्य सिखाने में स्कूल भी विशेष सफल नहीं हो सकता। जिस बालक के घर में पुस्तकों की अलमारियों में कूड़ा भरा हुआ हो उसे अच्छा साहित्य पढ़ने का स्वभाव डालनें में स्कूल को भी कठिनाई होती है। जिस बालक के घर में सदा कलह और असभ्यता का व्यवहार होता हो उसे साधारणतया स्कूल भी आत्मसंयम और सभ्यता का व्यवहार नहीं सिखला सकता। जिस बालक के माता-पिता अपनी आय का व्यर्थ अपव्यय कर देते हों उसे स्कूल भी मितव्ययता नहीं सिखला सकता। जिस बालक के घर में वयस्क सदस्य जानबूझ कर या अनजाने में धर्म या जाति का पक्षपात करते रहते हों उसके बालकों को स्कूल भी व्यक्ति का महत्व सिखलाने में सफल नहीं हो सकता। जो बालक अपने माता-पिता को पार्कों में कूड़ा फेंकते देखते रहेंगे उन्हें स्कूल भी सार्वजनिक सम्पत्ति का आदर करना नहीं सिखला सकेगा। जिन घरों में धार्मिक विश्वासों का सम्मान केवल वाणी से किया जाता हो और जो अपने वालकों को धार्मिक शिक्षण देने का उत्तरदायित्व अपने सिर लेने के लिए तैयार न हों, उनके बालकों को स्कूल भी धार्मिक भावनाओं का उचित ग्रादर करना नहीं सिखला सकता।

धार्मिक संस्थाएं नैतिक और आत्मिक गुणों पर जोर देती हैं

धर्म-स्थान और अन्य संगठित धार्मिक संस्थाएं नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में बहुत सहायक होती हैं। बड़े बड़े धर्म यह नहीं मानते कि मनुष्य निरा यान्त्रिक पुतला है। वे बतलाते हैं कि इस भौतिक जगत् से ऊपर भी एक शक्ति है। वे यह नहीं मानते कि मनुष्य भी एक ऐसा जन्तु है जिसे सधाया जा सकता है और जिसके सब व्यवहारों की पूरी व्याख्या केवल विज्ञान के नियमों से हो सकती है, और उन्हें उनके द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। वे ईश्वर के और मनुष्य के सम्बन्धों को समझने और सीखने का प्रयत्न करते हैं। वे मनुष्य के जीवन और मृत्यु और सुख और दुःख की शाश्वत समस्याओं से जूझते रहते हैं। इन असीम समस्याओं पर विचार करते हुए धर्म में नैतिक और आत्मिक गुणों पर असाधारण बल दिया जाता है। बहुत से अमेरिकियों

का विचार है कि एकमात्र धर्म का शिक्षण ही सदाचार की दृढ़ नींव डाल सकता और उसका सर्वोत्कृष्ट मार्ग दिखला सकता है।

इस कारण नैतिक और आत्मिक गुणों पर धर्म का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है। परन्तु धार्मिक नेता स्वयं यह मान लेने में संकोच नहीं करते कि यह प्रभाव सदा पूरी तरह सफल नहीं होता। धर्म भी, सम्भव है कि स्कूलों और अन्य संस्थाओं के समान, अपने ध्यान को आन्तरिक भावों की अपेक्षा बाह्य रूप पर केन्द्रित करने का प्रयत्न अधिक करे। इसलिए धार्मिक नेता बार बार आग्रह करते रहते हैं कि धार्मिक संस्थाओं को समाज के जीवन से अधिक निकट सम्बन्ध रखना चाहिए, उनके शिक्षण का मनुष्य की व्यावहारिक समस्याओं के साथ सीधा सम्बन्ध होना चाहिए, और धार्मिक सिद्धान्तों के उदार आदर्शों की तुलना में उनके सूक्ष्म विचारों को गौण कर देना चाहिए। धार्मिक संस्थाएं जब मनुष्य के आचार और सांसारिक व्यवहार में वास्तविक परिवर्तन कर देती हैं तभी वे नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में अधिकतम सहायक होती हैं।

समाज का जीवन स्कूलों के कार्य में सहायक अथवा बाधक हो सकता है

बहुत से नागरिक और उनकी संस्थाएं, नवयुवकों के स्वस्थ मनोरंजन और अन्य सामाजिक सुविधाओं की व्यवस्था करने के लिए अपने धन और समय का व्यय उदारता-पूर्वक करती हैं। इससे नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करने के कार्य में स्कूलों की भी उत्साह-वृद्धि होती है। धर्म-स्थान, व्यापारी लोग, स्त्रियों की क्लबें, मजदूर संगठन और अन्य अनेक संस्थाएं नवयुवकों के हितार्थ कठिन परिश्रम करते और विचार-पूर्ण योजनाएं बनाते हैं। इनके कारण नैतिक और आत्मिक गुणों का शिक्षण देने में सरकारी स्कूलों को बड़ी सहायता मिलती है। कहीं कहीं चुने हुए सिनेमा-चित्रों, बालकों के लिए किये गये संगीत के आयोजनों, नागरिकों की विवाद-सभाओं, संगीत-समाजों और नाटक-मंडलियों से भी युवकों और वृद्धों का नैतिक तथा आत्मिक विकास होने में सहायता मिलती है। माता-पिता अब सरकारी स्कूलों की सफलता का ध्यान पहले से अधिक रखने लगे हैं। वे शिक्षण-व्यवस्थाओं में भी योग देने लगे हैं। ये और इसी प्रकार की अन्य अनेक सामाजिक शक्तियां दिन-प्रतिदिन

समाज के जीवन को उन्नत करने और इस प्रकार नैतिक और आत्मिक गुणों का विकास करने में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक हो रही हैं।

दूसरी ओर, जिस समाज में नागरिक अधिकारी सार्वजनिक पदों और सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करते हों, न्याय-व्यवस्था को राजनीतिक दलों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए तोड़-मोड़ लिया जाता हो, पुलिस लालची और अदालतें रिश्वतखोर हों, और अन्य नागरिक बेईमानी करते हों अथवा उधर से आंख मींच लेते हों, उसमें स्कूल अथवा अन्य संस्थाएं कितना ही प्रयत्न क्यों न करें वे अधिक सफल नहीं हो सकतीं। जिस समाज में सभी सार्वजनिक प्रश्नों के हल की प्रधान कसौटी यह हो कि किस काम के करने से टैक्स घटेंगे या बढ़ेंगे उससे भी हम नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के लिए अधिक सहायता मिलने की आशा नहींकर सकते। जहां ध्यान से देखनें पर नवयुवकों को यह दिखायी दे कि राजनीतिक और सामाजिक जीवन उन आदर्शों से सर्वथा भिन्न मार्ग पर चल रहा है जो कि उनके शिक्षकों ने बतलाये हैं वहां वे स्वभावतः यही परिणाम निकालेंगे कि हमारे शिक्षक या तो अनभिज्ञ हैं या मिथ्या-भाषी। इन सभी अवस्थाओं में नैतिक और आत्मिक गुणों का सफल मार्ग-द्रष्टा मिलने की आशा बहुत नहीं की जा सकती।

सूचना-संचार के नवीन साधनों का भी बालकों के गुणों पर प्रभाव पड़ता है

आजकल छापेखाने सस्ती पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तकें धड़ाधड़ छापते रहते हैं। रेडियो, टैलिविजन और सिनेमा-चित्रों के कारण भी भले-बुरे विचारों को फैलाने के साधन कई गुणा बढ़ गये हैं। सूचना-संचार के ये साधन गरीब अमीर सबके लिए सुलभ होते जा रहे हैं। ये प्रादेशिक दूरी को समाप्त करने और सांस्कृतिक अवसर प्रदान करने में सहायक हो रहे हैं। इनके कारण अच्छा साहित्य, संगीत और नाटक सब के लिए सुलभ हो गये हैं। इनके द्वारा स्वस्थ मनोरंजन लोगों के घरों में ही पहुंच गया है। नागरिक समस्याओं और वर्तमान सामयिक घटनाओं की चर्चा और विवाद के द्वारा इन्होंने सार्वजनिक प्रश्नों में जनता की रुचि भी बढ़ा दी है।

दूसरी ओर, सूचना-संचार के व्यवसाय ने अपने कार्य के नैतिक परिणामों पर निरन्तर ध्यान नहीं दिया। यद्यपि कुछ लोग अपराधों और अन्य सामाजिक

बुराइयों के लिए रेडियो, टैलिविजन, सिनेमा-चित्रों और पत्र-पत्रिकाओं को दोष देते हुए उनकी एकदम निन्दा करने लगते हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्कूलों और अन्य लोगों के नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के प्रयत्नों में सामूहिक सूचना-संचार के इन साधनों के अनेक काम सचमुच सहायक नहीं होते और अनेक निश्चित रूप से बाधक होते हैं।

रेडियो-सेट आजकल नगरों और ग्रामों में प्रायः सभी घरों में पाये जाते हैं। यद्यपि बालकों के रेडियो-कार्यक्रम प्रायः ऊंचे दर्जे के होते हैं, परन्तु कुछ कार्यक्रम बालकों के लिए न होने पर भी उन्हें मनोरंजक लगते हैं और उनका परिणाम अवश्य संदिग्ध होता है।

टैलिविजन आंख और कान को एक साथ आकृष्ट कर लेता है और इसलिए सामूहिक सूचना-संचार के क्षेत्र में इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कई सरकारी स्कूलों के बालक टैलिविजन देखने में भी उतना ही समय लगाते हैं जितना कि कक्षाओं में। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि नवयुवकों के विकसित होते हुए मन पर टैलिविजन का प्रभाव, विशेषतः नैतिक और आत्मिक गुणों की दृष्टि से, कैसा पड़ता है। निःसन्देह कई कार्यक्रम उन नैतिक और आत्मिक गुणों के लिए बाधक होते हैं जिनके विकास का यत्न सरकारी स्कूल करते हैं। ऐसे कार्यक्रमों में बेमतलब बातचीत, अत्यधिक व्यापारिक दृष्टिकोण, अपराधों के रूपकों और निम्न चालचलन के हल्के नाटकों आदि की बहुतायत रहती है। इसके विपरीत, टैलिविजन के कुछ कार्यक्रमों से स्वस्थ मनोरंजन और सफल शिक्षण भी होता है।

सिनेमा-चित्र सूचना-संचार का एक पुराना साधन है, तिस पर भी वह अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। नवयुवक बहुधा अभिनेताओं और उनकी भूमिकाओं से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। ये कलाकार अपनी भूमिकाओं में प्रायः चरित्र और आत्मा के हीन गुणों का चित्रण करते हैं। निःसन्देह यह आशा तो की ही नहीं जा सकती कि सिनेमा-व्यवसाय केवल ऐसी ही फिल्में बनायेगा जो छोटे बालकों के लायक हों अथवा जिनमें जीवन के नैतिक दृष्टि से अंगीकृत भावों के अतिरिक्त अन्य किसी बात का प्रदर्शन न किया गया हो। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि नवयुवकों को अच्छे चित्रों के स्थान पर बार बार अनिष्ट और भड़कीले सिनेमा-चित्र दिखाने से

हीन गुण बढ़ जाते हैं, नवयुवक उनकी प्रशंसा भी करने लगते हैं, और इस प्रकार समाज के द्वारा अंगीकृत नैतिक गुणों की जड़ें खोखली होने लगती हैं।

पत्र-पत्रिकाओं का स्थान सूचना-संचार के उन प्रभावशाली साधनों में चौथा है जिनको आधुनिक विज्ञान ने जन्म दिया है। उनका उपयोग वे करते हैं जिनके पास प्रचार के लिए विचार होते और प्रचार के साधन अपने नियन्त्रण में रखनें की सामर्थ्य होती है। सामयिक प्रश्नों पर विचार प्रकट करने के अतिरिक्त, समाचार देकर भी पत्र-पत्रिकाएं नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। कोई भी पत्र सब समाचार नहीं छाप सकता। उनका चुनाव करना ही पड़ता है। और यदि स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण समाचारों को गौण मान कर, व्यक्तियों के दुराचार की घटनाओं को ही सदा प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया जाय तो उसका स्वाभाविक फल यही हो सकता है कि उन पत्रों के युवक पाठक भी गुणों और अवगुणों के चुनाव में ऐसा ही व्यवहार करना सीख जायं, क्योंकि उनका मन किसी भी बात से सुगमता-पूर्वक प्रभावित हो जाता है। इसके अतिरिक्त, जब समाचारों का संग्रह करते हुए भी निरन्तर सम्पादकीय पक्षपात से काम लिया जाने लगता है तब पाठक को मालूम भी नहीं पड़ता और वह छल तथा छद्म का पाठ सीख जाता है। अमेरिका के स्वतंत्र पत्र सब मिलाकर सत्य और शिष्टता का आदर करना सिखलाने में बहुत सहायक होते हैं। परन्तु जो प्रभाव नैतिक और आत्मिक गुणों का आदर करना सिखलाने के स्कूलों के प्रयत्नों में बाधक होते हैं उनमें, सत्य को बार बार और जानबूझ कर विकृत कर डालने और पक्षपात करने के उदाहरणों को भी सम्मिलित करना ही पड़ेगा।

सामूहिक सूचना-संचार के चारों बड़े साधनों का सम्मिलित प्रभाव इतना अधिक होता है कि उसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। सिनेमा-चित्रों को छः से सात करोड़ तक व्यक्ति प्रतिसप्ताह देखते हैं। लगभग आठ करोड़ रेडियो-सेट इस समय प्रयोग में आ रहे हैं। सितम्बर १९५० तक सत्तर लाख से ऊपर घरों में टैलिविजन लग चुका था। समाचारपत्रों की बिक्री प्रतिदिन पांच करोड़ प्रतियों से अधिक होती है। कागज की सस्ती जिल्द वाली पुस्तिकाओं का एक अकेला प्रकाशक प्रतिवर्ष लगभग अठारह करोड़ पुस्तकें बेच लेता है।

नवयुवकों के नैतिक और आत्मिक गुणों पर इन सब साधनों का प्रभाव अंशतः हानिकारक, अंशतः लाभदायक, और अंशतः उदासीन होता है। परन्तु हम उस प्रभाव की भी उपेक्षा सुगमता से नहीं कर सकते जो ऊपर से देखने में उदासीन लगता हो, क्योंकि तुच्छ बातों पर समय का अत्यधिक व्यय भी गम्भीर चिन्ता का विषय है।

अब इन सामूहिक साधनों और स्कूलों में थोड़ा बहुत लाभदायक सहयोग होने लगा है। अधिकतर स्कूल यह बतलाने का यत्न करते हैं कि पढ़ने योग्य सामग्री का चुनाव करते हुए किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। कुछ स्कूल दैनिक तथा मासिक पत्रों, सिनेमा-चित्रों और रेडियो प्रोग्रामों को परखने का शिक्षण भी देते हैं। सामयिक समस्याओं को मनोरंजक चित्रों द्वारा समझाने का यत्न किया जाता है। अमेरिका का 'मोशन पिक्चर एसोसियेशन' (चल-चित्र-संघ) सामयिक चित्रों को दर्शक की आयु के अनुसार छांट कर वितरित करता है। इसी के साथ माता-पिताओं और शिक्षकों की नैशनल कांग्रेस तथा अन्य संघों द्वारा छांटे गये चित्र भी वितरित किये जाते हैं। रेडियो और टैलिविजन संघटन कभी-कभी स्कूलों के सहयोग से बालकों के लिए स्वस्थ कार्यक्रम पेश करते हैं। कुछ स्कूल और कालेज अपने रेडियो और टैलिविजन कार्यक्रम भी तैयार करते हैं। ऐसे प्रयत्नों को और भी बढ़ाया जा सकता है। अभी तो प्रारम्भ-मात्र हुआ है। सहयोग के द्वारा जो काम हो सकता है उसका क्षेत्र बहुत विशाल है।

सरकारी स्कूलों को सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि और उसका स्वागत करना चाहिए

कुछ स्कूल अपना काम समाज के जीवन से सर्वथा पृथक रह कर करते हैं। परन्तु स्कूल का उद्देश्य नवयुवकों को यह सिखलाना होता है कि उन्हें समाज में कैसे रहना, उसके काम में कैसे भाग लेना, और उसके उत्तरदायित्व को अपने सिर कैसे उठाना चाहिए। जो स्कूल समाज से कटकर पृथक् रहेगा उसे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसके प्रयत्नों और उद्देश्यों को भली भांति समझा अथवा समर्थित किया जायेगा। अधिक से अधिक ऐसे स्कूल का मूल्य माता-पिता विशुद्ध निजी दृष्टि से लगावेंगे कि वह उनके बालकों के विकास में कहां तक सहायक होता है। इस प्रकार अलग-अलग पड़े हुए स्कूल

पर समस्त समाज के साथ सम्बन्धों की दृष्टि से नागरिकों का ध्यान कम हो जायगा।

समाज में विचारों के आदान-प्रदान को बढ़ाना, समान रुचि के लोगों में सम्बन्धों को घनिष्ठ करना, और नैतिक तथा आत्मिक गुणों के आधार पर निकट सहयोग को विकसित करना हो तो उसमें पहल सरकारी स्कूलों को ही करनी चाहिए। इन कामों के लिए घरों, धर्म-स्थानों और समाज के हित में रुचि रखने वाले अन्य संघटनों को प्रेरित करते रहना चाहिए। सरकारी स्कूलों को अपने अधिकार-क्षेत्र का उल्लंघन किये बिना, बालकों और युवकों के रचनात्मक विकास के लिए समाज के सब साधन एक सूत्र में बांधने का यत्न करना चाहिए।

बहुत से सरकारी स्कूल नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास का अपना कार्यक्रम प्रकाशित करके, जनता में उसका प्रचार पुस्तकालयों, धर्म-स्थानों, नागरिकों की क्लबों, विद्यार्थियों, पत्रों, और अन्य उपायों के द्वारा करते हैं और उससे उनको लाभ भी होता है। इन पुस्तिकाओं में लोगों को स्वस्थ सामाजिक और पारिवारिक जीवन के लाभ बतलाकर उनसे सहयोग की अपील करनी चाहिए। विविध सामाजिक संघटन नवयुवकों की जो जो सेवा करते हैं उसकी जानकारी भी सरकारी स्कूल जनता को दे सकते हैं। विद्यार्थियों को भी उनके माता-पिताओं की अनुमति से इन कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

माता-पिताओं और शिक्षकों के संघ, घर और स्कूल में सम्बन्ध की घनिष्ठता बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। यदि इन संघों के नेता योग्य हों तो इनके द्वारा घर और स्कूल को परस्पर परिचय और सहयोग करने के अनेक अवसर मिल सकते हैं। इनसे माता-पिताओं को और शिक्षकों को एक स्थान पर एकत्र होकर अपने समान हित के विषयों पर विचार करने का अवसर भी मिल सकता है। शरीर, मन, और आचार की चहुंमुखी उन्नति में ये संघ, घर और स्कूल और समाज के भाग को बहुत बढ़ा सकते हैं। यदि आवश्यकता हो तो सरकारी स्कूलों को इन संघटनों में बालकों के नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास की भी चर्चा करनी चाहिए। माता-पिता, शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर अपने समाज के आचार की सहायक और बाधक परिस्थितियों का विवेचन कर सकते और सम्मिलित कार्य के लिए लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं।

सरकारी स्कूलों में जनता की रुचि बढ़ रही है

हमारे देश में अनेक स्थानों पर किसान, गृहपत्नियां, कारखानों के श्रमिक, पेशेवर लोग, बड़े बड़े व्यापारी और दुकानदार, मिल कर स्कूलों की अवस्था सुधारने का विचार और संकल्प करने लगे हैं। कुछ वर्ष से स्कूलों में स्थानीय नागरिकों की रुचि पुनः जागृति हुई है। यह प्रवृति बढ़ रही है। उदाहरणर्थ, कहीं कहीं कुछ लोगों ने मिल कर स्कूलों की इमारतों की वर्तमान और भावी आवश्यकता का अन्दाजा लगाने के लिए स्थानीय आबादी में वृद्धि-क्रम का अध्ययन किया और नकद पूंजी की न्यूनता को अपनी सद्भावना और कठिन परिश्रम से पूरा करने का यत्न किया है। कई स्थानीय परिषदों के सामने जब विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या की समस्या आई तो उन्हों ने नये स्कूलों की इमारतें बनवाने और नये तथा अच्छे शिक्षक नियुक्त करने के लिए हुन्डियां जारी करने या टैक्स लगाने का समर्थन किया। कई स्थानों पर पाठ्य-क्रम में सुधार करने और शिक्षण की नवीनतम विधियों तथा साधनों का प्रयोग करने पर विशेष ध्यान दिया गया।

जनता की बढ़ती हुई रुचि को सरकारी स्कूलों के "सिटीजन्स कमीशन" से भी बहुत उत्साह और बढ़ावा मिला। यह कमीशन विविध पेशों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नागरिकों की एक स्वयं-संघटित संस्था है। इसकी स्थापना १९४८ में हुई थी। इसने नागरिकों की छोटी छोटी सभाएं बनाने, उनके विषय में आवश्यक सूचनाएं देने, और जनता की रुचि जागृत करने के लिए एक छः-वर्षीय आन्दोलन शुरू किया हुआ है कई राज्यों में भी अब नागरिकों के कमीशन बन चुके हैं और वे छोटी छोटी स्थानीय सभाओं के संघटन को प्रोत्साहित कर रहे तथा स्कूलों के लिए कानून बनवाने के दीर्घकालिक कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं।

स्कूलों को अधिक अच्छा बनाने के नागरिकों के इस बढते हुए प्रयत्न से प्रकट होता है। कि अमेरिकी जीवन में जनतंत्री भावनाएं और प्रवृत्तियां अब भी प्रबल हैं। गाँवों और मुहल्लों के लोग स्कूलों को अधिक अच्छा बनाने के लिए साधारणतया जो उत्साह प्रकट कर रहे हैं वही क्या वे युवकों के लिए स्वस्थ नैतिक परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिए नहीं कर सकते ? अमेरिकी लोगों का विश्वास कुछ नैतिक गुणों में बहुत गहरा है। और हमारा

शासन जनतन्त्री आधार पर संघटित होने के कारण जब एक बार उन गुणों में जनता की रुचि संघटित रूप में प्रकट होने लगेगी तो उसकी प्रतिक्रिया शासन में भी दीखने लगेगी। नवयुवकों में नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास का उत्तरदायित्व गांव या मुहल्ले का है, यह बात एक बार मान लेने पर, उसके परिणाम हमारे देश के लिए बड़े महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

माता-पिताओं और शिक्षकों में घनिष्ठ सहयोग की आवश्यकता

नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के लिए जनता और स्कूलों में सहयोग तीन विभिन्न मार्गों पर चल कर हो सकता है। प्रथम मार्ग, क़ानूनी और राजनीतिक व्यवस्थाओं का है। स्कूल-बोर्ड के सदस्यों को ऐसी शिक्षण-नीति निर्धारित करने और उस पर चलने का यत्न करना चाहिए जिससे कि प्रत्येक बालक को मूल-भूत नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास का पूरा पूरा अवसर मिल जाय।

द्वितीय मार्ग ग़ैर-सरकारी है, और जनता के प्रतिनिधियों और स्कूलों के संघटन में स्वेच्छापूर्वक सहयोग का है। नागरिकों की समितियां और गांव या मुहल्ले की अन्य परिषदें शिक्षण के कार्यों में साधारण जनता की रुचि को प्रकट कर सकती हैं। ये सभा-समितियां आम तौर पर उन्हीं समस्याओं पर विचार करती हैं जिनका सामना स्कूल-बोर्ड को भी करना पड़ता है। स्कूल-बोर्ड सारी जनता के अधिकृत प्रतिनिधियों से मिलकर बनता है। और नागरिकों की सभा-समितियों का यद्यपि कोई कानूनी अधिकार और उत्तर-दायित्व नहीं होता तो भी वे अनियमितरूपेण विचार करने, योजना बनाने, और कार्य करने में स्वतंत्र होती हैं। इन सभा-समितियों से लोकमत प्रकट और दृढ़ होता है, जिससे कानूनी अधिकारियों को अपने निर्णय करने और नीति निर्धारित करने में सहायता मिल जाती है।

तृतीय मार्ग, प्रत्येक बालक के शिक्षकों और माता-पिताओं में सीधे सहयोग का है। इसमें विचारणीय विषय अधिक निश्चित होते हैं। उनका सम्बन्ध किसी एक अथवा कुछ बालकों से होता है। निःसंदेह उनका प्रभाव व्यापक अर्थों में शिक्षण की नीति पर भी पड़ता है।

माता-पिताओं और शिक्षकों का संघ सहयोग के तृतीय मार्ग पर चलने के लिए एक उपयोगी साधन है। यह द्वितीय मार्ग में भी सहायता करता है। जिन व्यक्तियों की रुचि शिक्षण की व्यापक नीतियों में होती है उनमें माता-पिताओं के अतिरिक्त नागरिक भी सम्मिलित होते हैं। जिन लोगों के बालक सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं उनकी संख्या साधारणतया वयस्क आबादी में अल्प ही होती है। इस लिए माता-पिताओं और शिक्षकों क संघ नागरिकों की उन महत्वपूर्ण सभा-समितियों में से केवल एक है जो स्कूल और गांव या मुहल्ले में अनियमित सहयोग का काम करती है।

किसी एक अथवा कुछेक बालकों की समस्याओं पर सीधा विचार-विनिमय और सहयोग करने के लिए माता-पिताओं और शिक्षकों के संघ के काम का अपूर्व प्रभाव पड़ा है। गांव या मुहल्ले के आचार में सुधार के लिए अन्य कोई भी संघटन इतना फ़लदायक और प्रभावशाली नहीं हो सकता। ये संघ केन्द्रित तो एक ही स्कूल के चारों ओर रहते हैं परन्तु आवश्यक मन्त्रणा और कार्य के लिए इनका संघटन स्थानीय, राज्यीय, और राष्ट्रीय स्तर पर भी किया जाता है। प्रत्येक बालक में नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के लिये सक्रिय सहयोग का होना आवश्यक है। यह पारस्परिक परिचय और सम्पर्क का कार्य जितना अच्छा माता-पिताओं और शिक्षकों के संघ द्वारा हो सकता है उतना अन्य किसी संघटन द्वारा नहीं हो सकता।

इसलिए यह देखकर बहुत सन्तोष होता और उत्साह बढ़ जाता है कि माता-पिताओं और शिक्षकों की नेशनल कांग्रेस की सदस्यता, प्रतिष्ठा, और प्रभाव बढ़ते ही जा रहे हैं। १९५० में ६१ लाख नागरिक इसके सदस्य थे। देश के प्राय: प्रत्येक स्कूल पर इसका प्रभाव पड़ता है। यह संस्था विशेष रूप से अमेरिकी है। इकी जड़ें तो स्थानीय और वैयक्तिक सम्बन्धों में है, परन्तु यह बड़ी बड़ी समस्याओं के लिए सहयोग करने में प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रभाव डाल सकती है। प्रत्येक शिक्षक को और स्कूल के प्रबन्धकर्ता को चाहिए कि वह नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में मात-पिताओं और शिक्षकों के संघ से जो वास्तविक और महत्वपूर्ण सहायता मिलती है उसके मूल्य को भली भांति समझ ले।

स्कूल गांव और मुहल्ले के सुधार का मार्ग बतला सकते हैं

सरकारी स्कूलों को जनता के सदाचार का एकमात्र संरक्षक और निर्णायक बनाने का यत्न तो नहीं करना चाहिए, परन्तु वे गांव या मुहल्ले को युवकों के लिए अधिक अच्छा स्थान बनाने के प्रयत्न में पहल अवश्य कर सकते हैं। ऐसी प्रत्येक बात स्कूलों के लिए महत्वपूर्ण है जिसका उनके बालकों के जीवन पर प्रभाव पड़ता हो। स्कूल के कोई कोई शिक्षक या प्रिन्सिपल कभी कभी जनता को ऐसी बातों के विरुद्ध जागृत और सावधान करने में प्रत्यक्ष भाग लेते हैं जिनसे युवकों का चरित्र बिगड़ने या भ्रष्ट होने की सम्भावना हो। सरकारी स्कूलों के कार्यकर्ता अच्छे कामों की प्रशंसा और बुरों की निन्दा करके गांव या मुहल्ले को अच्छे कार्य करने और बुरे न करने के लिये प्रेरित कर सकते हैं। निःसन्देह ऐसे प्रयत्नों की सफलता प्रकट कभी कभी होती है।

एक बड़े नगर में, थोड़ी आय वालों की घनी आबादी में एक हाईस्कूल ने अड़ोस-पड़ोस के मित्रों की एक क्लब बनायी। वहां एकत्र होकर माता-पिता नागरिक मामलों पर बातचीत कर सकते थे, माताएं अपने घरों को अल्प व्यय में सुन्दर रखना सीख सकती थीं, और बच्चों का पालन-पोषण सिखाने के लिए वहां शाम को जो कक्षाएं लगती थीं उनमें माता-पिता अपने बालकों के सम्बन्ध में अन्य माता-पिताओं से बात कर सकते थे। एक उपनगर में हाईस्कूल के विद्यार्थियों ने मुहल्ले के लोगों से चन्दा इकट्ठा किया और एक पुरानी इमारत किराये पर लेकर तथा उसकी मुरम्मत करके सबके उठने बैठने योग्य चौपाल बनाली। विद्यार्थियों, माता-पिताओं और शिक्षकों के सम्मिलित प्रयत्न से यह स्थान मुहल्ले के सुधार और बालकों की बुराइयों का नियन्त्रण करने के लिए एक केन्द्र का काम करने लगा। नगरों और ग्रामों में इस प्रकार के अन्य भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

स्कूलों को साझेदारों की आवश्यकता

नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास के लिए सरकारी स्कूलों की जिम्मेवारी बहुत कुछ वैसी ही है जैसी कि शारीरिक उन्नति के लिए। यद्यपि

स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा देना भी स्कूलों का एक आवश्यक काम है, परन्तु यह कल्पना कोई नहीं करता कि आबादी को स्वस्थ रखने के लिए केवल उतनी शिक्षा पर्याप्त है। इसीलिए समाज में व्यापक और परस्पर-पूरक मैडिकल सर्विसों, चिकित्सालयों, चिकित्सकों, रोग-परीक्षा-गृहों, लेबोरेटरियों, स्वास्थ्य-बोर्डों, खाद्य पदार्थों और औषधियों की शुद्धता के कानूनों, सफाई-प्रबन्धों और अनुसंधान-केन्द्रों की स्थापना की जाती है। ये सब गांव या मुहल्ले के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अपना-अपना विशेष काम करते रहते हैं, परन्तु स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा का विशेष काम स्कूलों के ही जिम्मे रहता है। इसी प्रकार यद्यपि नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास का सदा, सर्वत्र और निरन्तर ध्यान रखना स्कूलों का कर्तव्य है परन्तु अन्य सबको भी उसकी ओर से आंखें नहीं मींच लेनी चाहिएं। गांव या मुहल्ले की सभी शक्तियों को उन गुणों के विकास के लिए मिलकर काम करना चाहिए।

जब रोग फैलता है तब साधारणतया हम स्कूलों को या अन्य किसी संस्था को दोष नहीं देते। अपितु हम रोग के निरोध और चिकत्सा के लिए समाज सब सेवा संघटनों पर अपनी नजर दौड़ाते हैं।। हम पारस्परिक सहयोग और प्रयत्न को बढ़ाने और स्वास्थ्य-संघटन के प्रत्येक अंग को अधिक सक्रिय बनाने पर ध्यान देते हैं। स्वास्थ्य का शिक्षण भी इन्हीं प्रयत्नों में से एक है। इसी प्रकार यदि हमारी जनता के नैतिक और आत्मिक गुणों का स्तर उतन ऊंचा न हो जितना कि हम चाहते हैं तो केवल स्कूल अथवा धर्म-स्थान ग्रथवा घर अथवा ससाज के अन्य किसी एक अंग को उसके लिए दोषी ठहरना उचित नहीं होगा।

इस प्रकार, नैतिक और आत्मिक गुणों के विकास में स्कूलों की अनिवार्य आवश्यकता रहेगी। वे यह कार्य करने की अपनी सामर्थ्य बढ़ा सकते हैं और उन्हें बढ़ानी भी चाहिए। उनका यह कार्य अन्य कोई संस्था न तो कर सकती है, न इतने अच्छे प्रकार कर सकती है। परन्तु मनुष्य का व्यक्तित्व निर्माण करने के पेचीदा कर्तव्य के प्रत्येक अंग की पूर्ती केवल सरकारी स्कूल नहीं कर सकते। यदि जनता यह सोचेगी कि अकेले स्कूल ही अन्य किसी की सहायता के बिना सब काम कर लेंगे तो उसे अवश्य निराशा का सामना करना पड़ेगा। और यदि शिक्षक-वर्ग भी ऐसी भारी जिम्मेवारी केवल अपने सिर लेने का यत्न करेगा, तो वह भी अवश्य निराश होगा। सरकारी स्कूलों को सहायकों और साझेदारों की आवश्यकता होती ही है।